

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182301

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. $\frac{H.81.6}{S\ 53\ C}$

Accession No. G. H. 2612.

Author శివ, తాతకూర్

Title చరిత్ర

This book should be returned on or before the date
last marked below.

च य नि का

प्रधान सम्पादक

पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'



मैकमिलन एण्ड कम्पनी लिमिटेड

२९४ बहूबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता १२

१९६०

मैकमिलन एण्ड कम्पनी लिमिटेड
लन्डन बम्बई कलकत्ता मद्रास मेलबोर्न
द मैकमिलन कम्पनी ऑफ़ कॅनाडा लिमिटेड
टोरांटो
सेंट मार्टिन्स प्रेस इन्क्०
न्यूयार्क

Checked 1965

बर्न कन्वेंशन को स्वीकृत करनेवाले समस्त देशों में
इस पुस्तक के स्वत्वाधिकार स्वरक्षित हैं ।

Checked 1969

मूल्य : १।।।३।

भारत में निर्मित ।

श्रीफणिभूषण राय द्वारा प्रवर्तक प्रिण्टि एण्ड हाफ्टोन (प्रा.) लि., ५२।३, बहुबाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता में मुद्रित ।

प्रस्तावना

एक निश्चित योजना के अनुसार चयनिका की रचना हुई है। अल्पतम मूल्य में एक सुंदर और वस्तुतः उपयोगी कविता-संग्रह विद्यार्थियों के हाथ में देने की इस योजना के पीछे जो साधन-सुविधा और ईमानदारी की भावना थी उससे प्रभावित होकर मैंने इसके सम्पादन का उत्तरदायित्व स्वीकार किया।

अपने प्रयत्न में हम कहाँ तक सफल हुए हैं यह देखना सुधी अध्यापक जनों का कार्य है। तथापि हम आशा करते हैं कि चयनिका के अंतरंग और बहिरंग दोनों से उन्हें संतोष होगा।

जिन आदरणीय और स्नेही कवि बंधुओं ने, एवं जिन प्रकाशकों ने, स्वाधिकार संरक्षित कविताओं को चयनिका में सम्मिलित करने की अनुमति दी है उनके हम हृदय से आभारी हैं।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

अनुक्रमणिका

भूमिका	...	...	...	७
१ . कबीरदास	...	...	...	२७
२ . सूरदास	...	...	...	३१
३ . गोस्वामी तुलसीदास	...	...	...	३८
४ . मोरारिबाई	...	...	...	४९
५ . रहीम	...	...	...	५२
६ . रसखान	...	...	...	५७
७ . बिहारी	...	...	...	५९
८ . गिरिधर कविराय	...	...	...	६१
९ . भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	...	...	...	६६
१० . श्रीधर पाठक	...	...	...	६९
११ . मैथिलीशरण गुप्त	...	...	...	७२
१२ . रामनरेश त्रिपाठी	...	...	...	८३
१३ . माखनलाल चतुर्वेदी	...	...	...	८९
१४ . जयशंकर 'प्रसाद'	...	...	...	९४
१५ . सुमित्रानन्दन पंत	...	...	...	९७
१६ . सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	...	...	...	१०३
१७ . श्रीमती महादेवी वर्मा	...	...	...	१०८
१८ . स्व० श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान	...	...	...	१११
१९ . बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	...	...	...	१२०
२० . रामधारी सिंह 'दिनकर	...	...	...	१२४
२१ . श्यामनारायण पाण्डेय	...	...	...	१२९
२२ . नरेन्द्र शर्मा	...	...	...	१४०
टिप्पणियाँ	...	...	...	१५३

राष्ट्रीय गीत

जनगणमन-अधिनायक जय हे

भारत-भाग्यविधाता ।

पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा

द्राविड़ उत्कल बंग

विन्ध्य हिमाचल यमुना गंगा

उच्छलजलधितरंग

तव शुभ नामे जागे,

तव शुभ आशिस मागे,

गाहे तब जयगाथा ।

जनगण-मंगलदायक जय हे

भारत-भाग्यविधाता ।

जय हे, जय हे, जय

जय जय जय, जय हे ॥

भूमिका

गुप्त काल भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग माना जाता है। हो संस्कृत साहित्य की अपरिमित श्री-वृद्धि से यह काल आलोकित हुआ। विश्वबंध अमर भारतीय काव्यों की इस युग में रचना हुई। इस गौरवशाली युग का अंत हुआ और ईसा की सातवीं शताब्दी में देश की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति में बड़े परिवर्तन हुए। हर्षवर्द्धन के बाद देश में कोई केन्द्रीय शक्तिशाली राजसत्ता नहीं रह गई थी। परस्पर लड़नेवाले छोटे-छोटे राज्यों में देश बँट गया। ऐसे संकट काल में हिन्दी के जन्म और विकास की गाथा के आरंभिक संकेत हमें मिलते हैं। मोटे रूप में हम यह कह सकते हैं कि सातवीं से दसवीं शताब्दी के बीच हमें हिन्दी के अत्यंत पुरातन रूप के दर्शन होते हैं। इन तीन सौ वर्षों में संपूर्ण उत्तर भारत सिद्धों की वाणियों से गुँजता रहा। यह परंपरा सरहपा, अंगगपा आदि चौरासी सिद्धों की वाणियों से लेकर नाथ-पंथ के प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ तक चलती रही। इस काल में भाषा का रूप एक-सा ही नहीं बना रहा। सिद्धों की वाणियों की भाषा लोकभाषा के अत्यंत निकट थी। इतिहासकार उसे 'सधुक्कड़ी' कहते हैं। अपभ्रंश का जो रूप इन प्राचीन रचनाओं में मिलता है वह क्रमशः परिमार्जित और परिष्कृत होता रहा। उत्तर भारत के पूर्वी और पश्चिमी प्रदेशों की 'अपभ्रंश' भाषाओं में भेद था। पूर्वी प्रदेशों में तत्त्व-ज्ञान और आध्यात्मिक विषयों की धार्मिक भावनायुक्त रचनाएँ अधिक हुई। पश्चिमी प्रदेशों में शृंगार, वीर रस और नीति विषयक कविता-धारा प्रवाहित हुई।

कालांतर में अवध, काशी, बिहार आदि पूव प्रदेशों की कविता-धारा विकसित होकर भक्ति साहित्य और संत साहित्य की जननी बनी। दूसरी ओर पश्चिमी अपभ्रंश की कविता विकसित और पुष्ट होकर वीर-गाथाओं, डिंगल काव्य, और रीति काव्य के रूप में प्रकट हुई।

वीरगाथाओं का युग (सन् १०००-१३०० ई०)

देश की जिस अव्यवस्थित दशा का संकेत हम कर चुके हैं, उसमें कोई सुधार नहीं हुआ। एक ओर छोटे-छोटे राजाओं के पारस्परिक संघर्ष बढ़ते गए और दूसरी ओर पश्चिमी प्रांतों पर विदेशी सेनाओं के आक्रमण होते रहे। आंतरिक कलह के मुख्य कारण मान-प्रतिष्ठा, वीरत्व-प्रदर्शन, राज्य-विस्तार या फिर सुंदरी राजकन्याएँ हुआ करती थीं। संघर्ष की इस व्यापक प्रवृत्ति को विदेशी आक्रमण प्रोत्साहित करते रहे। ऐसे युग में चारण कवियों का बहुत मान था। उनकी रचनाओं का बोलबाला था। चारण कवियों की रचनाएँ प्रायः नरेशों और सामंतों के वंश-गौरव का स्मरण करानेवाली, पौष को प्रदीप्त करनेवाली और रणोचित भावनाओं को प्रेरणा देनेवाली थीं। ये रचनाएँ या तो स्फुट पदों के रूप में होतीं अथवा किसी वीर राजा के जीवन की घटनाओं के प्रबंध काव्य के रूप में।

युद्ध और प्रेम के रंगों में रंगी उपर्युक्त कोटि की रचनाओं को ही हम “वीरगाथा” कहते हैं। इनमें यद्यपि राजस्नुनिमूलक रचनाओं की प्रधानता थी, तथापि लोकगीतात्मक, अर्थात् साधारण जनता के जीवन और घटनाओं आधारित, गाथाएँ भी पर्याप्त मात्रा में रची गईं।

राजदरबारों के आश्रित चारण, अपने नरेशों और उनके वंश की विरुदावली की रचना करते थे। इन प्रशस्ति काव्यों का एक सुगठित रूप बन गया था, जिसे “रासो” कहा जाता है। “रासो” की उत्पत्ति ‘रसायन’ शब्द (अर्थात् ‘काव्य’) से मानी जाती है।

पृथ्वीराज रासो: चंदबरदाई का ‘पृथ्वीराज रासो’, वीरगाथाओं की कोटि में सर्वोत्तम रचना है। इसके पूर्व अनेक रासो ग्रंथ रचे गए थे जिनमें ‘खुमान रासो’ और ‘बीसलदेव रासो’ उल्लेखनीय हैं। किंतु इनमें प्रक्षिप्त अंश अत्यधिक मात्रा में, बाद में, जोड़े गए हैं। फलस्वरूप हम ‘पृथ्वीराज रासो’ को ही वीरगाथा काल का आदि ग्रंथ कह सकते हैं। महा-राज पृथ्वीराज के राजकवि, परामर्शदाता और मित्र, चंदबरदाई (११६८-

११९४ ई०) ने ढाई हजार पृष्ठ के इस विशाल ग्रंथ की रचना की है। अपने जीवन-काल में चंद इसे समाप्त नहीं कर सके थे। बाद में उनके पुत्र जलहन ने इसे पूरा किया था। महाराज पृथ्वीराज के जीवन के अनेक युद्धों का, जयचंद और शहाबुद्दीन आदि से लंबे संघर्षों का, और पृथ्वीराज के अनेक विवाहों का इसमें अद्भुत वर्णन है। संयोगिता-हरण और गोरी के साथ युद्ध की घटनाओं का पृथ्वीराज रासो में प्रमुख स्थान है। दुर्भाग्यवश अभी तक पृथ्वीराज रासो की वशुद्ध प्रामाणिक प्रति उपलब्ध नहीं है। जिस रूप में यह ग्रंथ हमें मिलता है वह इसके मूल रूप का आभास ही दे पाता है। फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं है कि चंद एक विलक्षण प्रतिभा की स्वामी थे। उनकी वाणी में अतुलनीय प्रवाह है। उनकी वर्णन शैली, और प्रसंग के अनुरूप कवि के इंगित पर चलनेवाली भाषा, पाठक के चित्त को मुग्ध कर लेती है। युद्ध का वर्णन करते हुए चंद कवि कहते हैं कि:—

मिले लोह हथ्य सुवथ्यं हंकारे ।
उड़े गगन लगं सकं सार भारे ॥
कटे कंध कामंध संधं निनारे ।
परै जंग रंगं मनो मत्त वारे ॥
भरं संभरी राव सो सार भारे ।
जुरें मल्ल हल्लै नही जो अपारे ॥
गहै सुंड दंतीन दन्ता उभारे ।
मनों कंदला कंद भीलं उषारे ॥
बहै वान कम्मान दीसै न भानं ।
भ्रमै गिद्धिनी गिद्ध पावै न जान ॥

आल्हा खण्ड : वीरगाथा-काल की दूसरी सबसे महत्वपूर्ण रचना जगनिक कवि का आल्हा खण्ड है। पृथ्वीराज रासो राजस्तुति-प्रधान काव्य था। आल्हा खण्ड लोकगीतात्मक वीरगाथाओं की श्रेणी में सर्वोत्कृष्ट है। आज तक यह बुंदेलखंड और बैसवाड़ की जनता का कंठहार

बना हुआ है। इसमें भी प्रक्षिप्त अंश बहुत है। फिर भी मूल का आभास पूरा मिलता है। आज से प्रायः सात सौ वर्ष पहले इसकी रचना हुई थी। महोबे के वीर आल्हा और ऊदल की वीरता का इसमें अद्भुत वर्णन है। जगनिक साधारण जनता के प्रतिनिधि लोककवि के रूप में शताब्दियों से समादृत है। वीर छंद लि गये इस काव्य की छटा निराली है। रणक्षेत्र में अपने प्रिय घोड़े 'बेंदुला' पर चढ़ा हुआ ऊदल सैनिकों को उत्तेजित कर रहा है :—

“मुर्चन मुर्चन नचै बेंदुला ऊदनि कहै पुकारि पुकारि—

नौकर चाकर तुम नाहीं ही, तुम सब भैया लगौ हमार।

पाँव पिछाड़ी को ना धरियो, यारी रखियो धर्म हमार॥

समुहै लड़िकै जो मरि जैहौ, ह्वै है जुगनि जुगनि लौं नाम।

खटिया परिकै जो मरि जैहौ, कोउ ना लिहै तुम्हारो नाम॥

दे दे पानी रजपूतन को, ऊदनि आगे दियो बढाइ।

भुके सिपाही महुबे वारे, जिनके मार मार रट लागि॥”

वीरगाथा-काल को अधिक सामग्री अभी प्रकाश में नहीं आई। इस दिशा में अभी बहुत शोध-कार्य की आवश्यकता है।

डिंगल और पिंगल : वीरगाथाओं की लोकप्रियता में क्रमशः ह्रास हुआ। तेरहवीं शताब्दी में भारतवर्ष में मुसलमानी शासन का सूत्रपात हो चुका था। चारण कवियों की प्रतिष्ठा हिन्दू दरबारों की अपनी परंपरा थी, और फलतः वह अन्य प्रांतों की अपेक्षा राजस्थान में अधिक काल तक सुरक्षित बनी रही। राजपूताने के स्वतंत्र राजपूत राजाओं के दरबारों में स्थानीय भाषा में ये चारण कवि अपनी रचनाएँ करते रहे। राजस्थानी भाषा की इस प्रकार की कृतियों को डिंगल काव्य कहते हैं। वीरत्व और वंश-नौरव की व्यंजना डिंगल काव्य का आधार थी।

इन कवियों को कोमल भावों की अभिव्यक्ति और सरस मनोहर वर्णन के लिए ब्रजभाषा अधिक अनुकूल प्रतीत होती थी और इस प्रकार की ब्रज-भाषायुक्त काव्य-रचना को पिंगल काव्य कहा गया।

प्रेमाख्यान और सूफ़ी कवि

मुसलमानों का शासन क्रमशः शक्तिशाली होता गया। इस देश के अनेक निवासियों ने शासकों के धर्म को ग्रहण कर लिया। कई छोटी-छोटी जातियाँ सामूहिक रूप से मुसलमान हो गईं। लेकिन इनके संस्कारों में पुराना हिन्दुत्व कुछ समय तक बचा रहा और इस कोटि के लोगों में अनेक प्रतिभाशाली कवि हुए। इन कवियों की रचना में भारतीय काव्य-रचना की परंपरा का निर्वाह उसी भाँति हुआ जैसा हिन्दू कवियों की रचनाओं में।

प्राचीन भारतीय प्रेमाख्यानों को, कहानियों को, काव्य के रूप में लिखने के उल्लेखनीय प्रयत्न इस काल (चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी) में हुए। भारतवर्ष में इन्हीं दिनों सूफ़ी साधना का भी आविर्भाव हुआ।

खुसरो : इस काल का अवलोकन करते ही हमें सबसे पहले मुसलमान कवि अमीर खुसरो के दर्शन होते हैं। वर्तमान काल में प्रचलित खड़ी बोली का भी पहला परिचय खुसरो की रचनाओं में मिलता है। इस भाषा में उन्होंने मुकरियाँ, पहेलियाँ और दोसखुने लिखे हैं। खुसरो ने ब्रजभाषा में गीत और दोहे भी लिखे। अमीर खुसरो की शैली अत्यंत सरस है, और तत्कालीन लोकभाषा के किंचित परिमार्जित रूप पर उनका पूरा अधिकार है।

सूफ़ी प्रेममार्गी भक्तों ने अपने काव्यों में प्रेम-व्यापार को प्रधानता दी। ईश्वर-बंदना, मुहम्मद साहब की स्तुति और परोक्ष सत्ता के प्रति विरह-व्यंजना इनके प्रमुख विषय थे। उसमान की चित्रावली, कुतबन शेख की मृगावती और, इन सबसे बढ़कर मलिक मुहम्मद जायसी का पद्मावत इस कोटि की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं। ये रचनाएँ अवधी भाषा में, दोहों और चौपाइयों में हैं।

जायसी उक्त काल के प्रेम-कथानक रचयिताओं में अद्वितीय है। पद्मावत में चित्तौड़ के राजा रतन सेन और सिंहल की राजकुमारी पद्मावती की प्रेम-गाथा का वर्णन प्रधान है। काव्य की भारतीय शैली का पूर्ण अनुकरण करते हुए जायसी ने ठेठ अवधी भाषा में अपूर्व सौंदर्य-सृष्टि की है।

जायसी का विरह-वर्णन अद्भुत है :—

“साँझ भये भुरि-भुरि पथ हेरा ।
 कौन सो घरी करै पिउ फेरा ॥
 दहि कोइला भइ कंत सनेहा ।
 तोला माँसु रह्यो नहि देहा ॥
 रक्त न रहा विरह तन गरा ।
 रती-रती होइ नैनन्ह ढरा ॥
 पाय लागि जोरै धनि हाथा ।
 जारा नाह जुड़ावहु नाथा ॥

प्रेमाख्यानों की श्रेणी में दामो कवि की लक्ष्मणसेन-पद्मावती की कथा, काशीराम की कनक मंजरी, और पुहकर का रस रतन काव्य भी उल्लेखनीय हैं।

भक्ति काल

पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में हिन्दी कविता को अत्यंत प्रतिभा-शाली अनूठे महाकवियों की अमृत वाणी का प्रसाद मिला। दर्शन, अध्यात्म, भक्ति, कला और संगीत, सभी की ज्वलंत महिमा हिन्दी-काव्य में मुखर हो उठी।

भक्ति-काल की काव्य-गंगा—निर्गुण और सगुण—दो स्पष्ट धाराओं में प्रवाहित हुई। वस्तुतः इस काल के मनीषी कवि ‘कोरे कवि’ नहीं थे। वे साधक और भक्त भी थे। स्वभावतः उनकी रचनाओं में उनके आत्मा और ज्ञान का प्रकाश पूर्णतया प्रतिबिम्बित हुआ।

निर्गुण और सगुण : भक्ति कालीन कवियों के दो वर्गों में एक वर्ग ऐसा था जो यह नहीं मानता था कि भगवान किसी प्राणी का शरीर धारण कर अवतार लेते हैं। उनका मत था कि भगवान

निर्गुण रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द, आकृति, आदि से परे हैं।

वे निराकार हैं, सत्त्व, रज और तम, इन तीनों गुणों से परे हैं—निर्गुण हैं। जिन भक्तों ने, इस प्रकार, भगवान को निर्गुण मानकर

भक्ति की वे निर्गुणिया कहलाए। धार्मिक बाह्याडंबरों और रूढ़ियों के प्रति इन भक्तों में एक विद्रोह-भावना थी। स्वामी रामानंद का यह उद्घोष कि “जाति-पाँति पूछै नहि कोई, जो हरि को भजै सो हरि कै होई” —शताब्दियों से हमें धार्मिक संकीर्णता को चूर करने की प्रेरणा देता चला आ रहा है।

कबीर

निर्गुण साधक कवियों में कबीरदास का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। निर्गुण मत की व्यवस्थित प्रतिष्ठा इन्हीं के द्वारा हुई।

कबीर में एक युगप्रवर्तक महात्मा का आत्मविश्वास था। भगवान के प्रेम में वे आपाद-मस्तक निमग्न थे। उनका प्रेम असाधारण और अलौकिक था। धार्मिक कठमुल्लापन और रूढ़ियों, आडंबरों एवं अंध-विश्वासों पर उन्होंने गहरा आघात किया है। पंडित, मुल्ला, अवधूत सभी को उनके व्यंग-बाणों ने बधा। उनकी उक्तियों में पोथी का ज्ञान नहीं, आत्मानुभव बोलता है। भाषा-शैली की दृष्टि से कबीर की रचनाओं में हमें एक ओर सहज सरलता का परिचय मिलता है तो दूसरी ओर अन्योक्तियों और रूपकों की भरमार। किंतु उनकी अधिकांश रचना सहज लोक-भाषा में ही हैं। धार्मिक भेदभाव, और ऊँच-नीच की भावना को दूर करने के लिए जहाँ उन्होंने क्रांति का शंख फूँका, व्यंग-बाणों की वर्षा से कठमुल्लों को मर्महत किया; वहीं उनकी बाणी ने प्रेम और भक्ति की अपूर्व अमृत-वर्षा भी की। विश्व के श्रेष्ठ कवियों में कबीर का स्थान है।

निर्गुण भाव से भजन करनेवाले भक्त कवियों में गुरु नानक का स्थान भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे एक सिद्ध महात्मा और भक्त ही नहीं, बहुत बड़े समाज-सुधारक भी थे। जातिभेद के विरुद्ध वे एक क्रांति के प्रवर्तक थे।

दादू और रैदास का स्थान भी निर्गुण भक्त कवियों में ऊँचा है। रैदास जाति के चमार थे और राजस्थान के भक्त साधक दादूदयाल, धुनिया या अन्य मुसलमान कुल के थे। इनकी मधुर वाणियों में भक्ति और वैराग्य का अद्भुत समन्वय है। रैदास की कविताओं में आत्मनिवेदन के स्वर अत्यंत मार्मिकता के साथ मुखर हुए हैं।

भक्तों का दूसरा वर्ग ऐसा था जो भगवान के सगुण रूप की उपासना करता था। सगुण अर्थात् गुणयुक्त।

जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, शरीर तीन गुणों से ही बनता है। तात्पर्य यह कि देहधारी या साकार भगवान की उपासना ही 'सगुण' उपासना है। सगुण भाव से भजन करनेवाले भक्त कवि भगवान के किसी अवतारी रूप की भक्ति करते थे। पुराणों के अनुसार विष्णु भगवान नौ अवतार धारण कर चुके हैं। इन्हीं अवतारों में राम और कृष्ण हुए। सगुण भाव के भक्त कवियों की दो मुख्य शाखाएँ हैं, कृष्ण-भक्ति-प्रधान और राम-भक्ति-प्रधान। दोनों ही शाखाओं के भक्त वैष्णव कहलाते हैं। इनमें से किसी एक रूप को भजनेवाले दूसरे रूप के विरोधी नहीं होते। भक्त कवियों ने प्रायः भगवान के नाना रूपों की महिमा गाई है।

कृष्ण-भक्ति-प्रधान काव्य की रचना के प्रेरणा-पुंज के रूप में महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य और महाप्रभु श्री चैतन्य देव की उज्ज्वल भक्ति का प्रकाश भारतवर्ष में आलोकित हुआ। इन महान विभूतियों की अवतारणा के बहुत पहले से भी कृष्ण-भक्ति-मूलक काव्य की परंपरा चली आ रही थी। मिथिला के रस-सिद्ध कवि विद्यापति ने चौदहवीं शताब्दी में राधा-कृष्ण की भक्ति से विभोर होकर ऐसे प्रमगीतों की रचना की थी कि जिनका गान करते हुए स्वयं महाप्रभु चैतन्य देव मूर्छित हो जाते थे।

अष्ट-छाप : महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र गोसाईं बिट्टलनाथ ने अपने पिता के, और अपने, शिष्यों में श्रेष्ठ आठ कवियों को अष्टछाप की

संज्ञा दी। अष्टछाप के आठ कवि ये हैं: सूरदास, कृष्णदास, परमानंददास, कुंभनदास, नंददास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी और गोविंदस्वामी।

सूरदास

अष्टछाप के उक्त कवियों में सबसे श्रेष्ठ भक्तकवि सूरदास हैं। भगवान के लीला-गायकों में वे अमर हैं।

ब्रजभाषा को परिष्कृत साहित्यिक रूप देने का श्रेय सूरदास को प्राप्त है। उनका सूरसागर भारतीय वाङ्मय के अमर ग्रंथों में है। वात्सल्य के वर्णन में सूरदास की समता करनेवाला कवि विश्व-साहित्य में दुर्लभ है। कृष्ण के इस भक्त-सखा कवि ने अपने प्रेम-पगे-प्राणों का अमृत-रस अपने पदों में उँडेल कर रख दिया है। सूर सचमुच भारतीय काव्याकाश के सूर्य हैं—‘सूर सूर तुलसी शशी उडुगन केसवदास’। उनकी तीव्र अनुभूति के रस में डूबे हुए मार्मिक वर्णन पाठक या श्रोता के मनःप्राण को अभिभूत कर लेते हैं।

अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद नंददास का ही स्थान है। कहावत है—“और सब गढ़िया, नंददास जड़िया।” अष्टछाप की परिधि के बाहर भी अनेक श्रेष्ठ भक्त कवि हुए। हितहरिवंश, रसखान, और कृष्ण-प्रेम की दीवानी मीराँ की रचनाओं ने भक्ति और प्रेम की अपूर्व रस-माधुरी प्रवाहित की।

मीराँबाई

श्रीकृष्ण के प्रेम की दीवानी मीराँबाई के पदों में विरह की पीर और प्रियतम के चरणों में संपूर्ण उत्सर्ग की उत्कट भावना का अपूर्व समन्वय है। कृष्ण के प्रेम की टेर को गुंजरित करनेवाले उनके पद आज भी सारे भारत में गाए जाते हैं। मीराँ ने मात्र छंद रचना के लिए नहीं वरन् अपनी आत्मा की पुकार को रूप देने के लिए पद गाए थे।

राम-भक्ति-प्रधान काव्य

रामावतार को भगवान का मुख्य अवतार मानकर जिन कवियों ने काव्य-रचना की उनमें संत-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास और भक्त-

माल के रचयिता नाभादास मुख्यतम हैं। विश्व के सर्वश्रेष्ठ अमर कवियों में गोस्वामी तुलसीदास का श्रद्धेय स्थान है।

गोस्वामी तुलसीदास

तुलसीदास हिन्दी-काव्य-संसार में सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हैं। उच्च कोटि के भक्त होने के साथ ही उनमें गंभीर पांडित्य और अपूर्व काव्य-प्रतिभा थी। लोक-मंगल के प्रति वे अत्यंत जागरूक थे। राम-चरितमानस उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। हिन्दी भाषियों में पिछली तीन शताब्दियों से तुलसी की यह रामायण पूज्य और वंदित है। तुलसीदास की अधिकतर रचनाएँ अवधी में हैं। उनकी विनयपत्रिका में भाषा की जो शक्तिमत्ता प्रकट हुई है वह अतुलनीय है।

काव्यकला के वे श्रेष्ठतम आचार्य थे। भाषा उनकी चेरी थी। प्रसंग के अनुरूप वह उनके इंगित पर नृत्य करती थी। 'श्रीकृष्ण गीतावली' को उन्होंने ऐसी ब्रजभाषा में लिखा है कि उसके माधुर्य और पदलालित्य की तुलना उनकी अवधी की ही रचनाओं से की जा सकती है। उत्तर-भारतीय लोक-जीवन को तुलसीदास की रचनाओं ने अत्यंत व्यापक रूप से प्रभावित किया है।

इस प्रकार प्रायः तीन शताब्दियों तक भक्ति और भगवत्प्रेम की पावन भाव-भूमि पर हिन्दी-काव्य-धारा प्रवाहित होती रही। इसके पश्चात् उसने एक नई दिशा ग्रहण की। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक को अवधि को साहित्य के इतिहासकारों ने 'रोतिकाल' नाम दिया है।

रोतिकाल की काव्य-रचना

शृंगार रस की विलासितापूर्ण कविताएँ, राजाओं और सामंतों की स्तुति-परक पद्य-रचना, और निरे मनोविनोद या शाब्दिक आडंबर-प्रदर्शन के लिए छंद-रचना, मोटे रूप से, वीरगाथा-काल से ही हो रही थी।

बीच में भक्ति के प्रबल आंदोलन ने और महान संत कवियों की श्रेष्ठ कृतियों के प्रभाव ने उक्त कोटि की कविताओं की लोकप्रियता बहुत घटा दी थी। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संतों की परंपरा को आगे बढ़ानेवाले श्रेष्ठ लोकनायकों के अभाव में और देश की पुनः अवनत राज-नीतिक स्थिति के कारण शृंगार-रस-प्रधान रचनाओं की लोकप्रियता और प्रचार में वृद्धि आरंभ हुई। इन कविताओं में एक ओर अलंकारों के चमत्कार और नायिका-भेद के दिग्दर्शन को महत्त्व दिया गया और दूसरी ओर कृष्ण और राधा तथा गोपियों की लीलाओं के व्याज से शृंगार-प्रधान क्रीड़ाओं के वर्णनों ने प्रधानता पाई।

भक्तिकाल और रीतिकाल के संधि-स्थल पर हमें महाकवि केशवदास और अब्दुरहीम खानखाना 'रहीम' के दर्शन होते हैं। केशवदास संस्कृत के बड़े विद्वान थे। इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की। 'राम-चंद्रिका' नामक एक प्रबंध काव्य और 'वीरसिंह देव चरित' नामक वीर रस का एक काव्य भी इन्होंने लिखा। इनकी 'कविप्रिया' और 'रसिक-प्रिया', क्रमशः अलंकार शास्त्र और नायिका-भेद के महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं।

अब्दुरहीम खानखाना 'रहीम'

रहीम की रचनाओं में शृंगार और भक्ति के साथ ही नीति और सामाजिक जीवन के अनुभवों पर सरल किंतु मार्मिक उक्तियों की अपूर्व छटा है। कहावतों का उपयोग भी इन्होंने किया है। रहीम के दोहों का ठाट निराला है। प्रसाद गुण और भाववैभव इनकी रचनाओं में बड़े मनोहर रूप में समन्वित हैं।

परवर्ती शृंगार युग में वीर रस की ओजस्वी कविता रचनेवाले कवि भूषण का प्रादुर्भाव हुआ। ये शिवाजी के दरबार में रहे थे और 'शिवराज-बावनी' नामक वीर रस के उत्तम काव्य-ग्रंथ की रचना की थी। 'शिवराज-भूषण' और 'छत्रसाल दशक' भी इन्हीं के ग्रंथ हैं। ओज और शक्ति से

परिपूर्ण भाषा पर इनका पूरा अधिकार था, और वीर रस की तो वे जैसे मूर्ति ही थे।

रीतिकाल के प्रमुख कवियों में बिहारी, मतिराम, सेनापति, पद्माकर, देव, और घनानंद हैं।

बिहारी

गागर में सागर भरनेवाले, सात सौ दोहों की सतसई के रचयिता, बिहारी-लाल का कृतित्व विशेष उल्लेखनीय है। ठीक ही कहा गया है कि:—
“सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर। देखन में छोटे लगें, धाव करें गंभीर”।

ये जयपुर नरेश के राजकवि थे। इनके दोहों का मुख्य विषय शृंगार-वर्णन ही था, तथापि भक्ति और नीतिविषयक दोहे भी इन्होंने अत्यंत सफलता से रचे। थोड़े-से-थोड़े शब्दों में माधुर्य और कोमलता के साथ भाव व्यक्त करने की इनमें अपूर्व क्षमता थी।

सेनापति का प्रकृति-वर्णन ब्रजभाषा-काव्य-साहित्य की एक शोभा है। पद्माकर की रचनाओं में पदलालित्य और रसिकता की मोहक प्रचुरता है। घनानंद बड़े ही प्रेमी और भक्त कवि थे। इन सभी ने ब्रजभाषा में अत्यंत लालित्यपूर्ण पदावली की रचना की। घनाक्षरी और सवैया की रचना की जो परंपरा इस काल में पुष्ट हुई वह न्यूनाधिक मात्रा में उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी समादृत है। किंतु पिछले पच्चीस-तीस वर्षों में उसकी लोकप्रियता क्रमशः नष्ट हो रही है। खड़ी बोली में काव्य-रचना के आरंभ ने एक नये युग का सूत्रपात कर दिया।

आधुनिक हिन्दी कविता

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भाग से भारतवर्ष में एक अभूतपूर्व चेतना का उद्भव और प्रसार आरंभ हुआ। पराधीनता के प्रति विद्रोह की भावना

ने समग्र देश के मानस को झकझोरना आरंभ किया। सन् सत्तावन का विद्रोह हुआ। महर्षि दयानंद द्वारा आर्य समाज की स्थापना हुई और हिन्दी के माध्यम से उन्होंने अपने मत का प्रचार किया। सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन हुए। हिन्दी के जिस रूप से आज हम परिचित हैं उस 'खड़ीबोली' का परिमार्जन हुआ। साहित्य में उसकी प्रतिष्ठा और प्रसार का श्रीगणेश हुआ। इन सब घटनाओं के प्रभाव से साहित्य अछूता नहीं रह सकता था।

इस नये युग के संदेशवाहक के रूप में भारतेन्दु का उदय हुआ। भारतेन्दु हरिश्चंद्र का जन्म सन १८५० ई० में हुआ। तैंतीस वर्ष की अल्प अवस्था में ही उनका स्वर्गवास हो गया। किंतु इस संक्षिप्त जीवन-काल में उन्होंने हिन्दी साहित्य को एक नया जीवन प्रदान किया। पुरातन परंपरा और पश्चिमी देशों के संपर्क से बढ़ते हुए नय ज्ञान को उन्होंने समान भाव से अपनाया। फलस्वरूप उनकी बहुमुखी तेजस्वी प्रतिभा ने पुराने और नये भावों को अपनी रचनाओं में व्यक्त किया। तत्कालीन विचारधारा का सर्वोत्तम परिचय इनकी अनेक कविताओं से मिलता है। एक ओर उन्होंने गद्य का परिमार्जन कर उसे अभिनव प्रवाहयुक्त रूप दिया; दूसरी ओर प्राचीन गौरव और नवीन आशा के भाव भरनेवाली कविता की रचना की। उनकी विलक्षण प्रतिभा और अत्यंत मोहक व्यक्तित्व ने अनायास ही उनके चतुर्दिक लेखकों और कवियों की एक अनोखी मित्र-मंडली को भी जन्म दिया। भारतेन्दु के समकालीनों में महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी, श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० बालकृष्ण भट्ट और पं० अम्बिकादत्त व्यास प्रमुख हैं।

आधुनिक कविता की भाषा

भावों की दृष्टि से भारतेन्दु ने हिन्दी कविता में जिस युगांतर का सूत्रपात किया उसके विकास का पथ क्रमशः प्रशस्त होता गया। भारतेन्दु

और उनके समकालीन कवियों ने ब्रजभाषा में ही अधिकांश काव्य-रचना की थी।

गद्य के क्षेत्र में खड़ीबोली ने इसी काल में प्रतिष्ठा पाई। पद्य-रचना के लिए भी उसका उपयोग हो, इस मत का आरंभ में कुछ विरोध तो हुआ, लेकिन पं० नाथूराम शर्मा 'शंकर', पं० श्रीधर पाठक और श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने खड़ीबोली में बड़ी योग्यता से काव्य-रचना करके पद्य के क्षेत्र में भी खड़ीबोली को विधिवत प्रतिष्ठित करना आरंभ कर दिया। इसी समय राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की अन्तही काव्य-प्रतिभा का योग हिन्दी साहित्य को मिला। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि खड़ीबोली कविता की भाषा बनने के लिए पूर्ण रूपेण सक्षम है। वस्तुतः खड़ीबोली को भली भाँति हिन्दी-काव्य-रचना की भाषा के रूप में साज-सँवार कर स्थायी रूप से प्रतिष्ठित करने का श्रेय गुप्तजी को ही है। अपनी रचनाओं में नयी चेतना और आधुनिक भाव-धारा को उन्होंने अत्यंत सफलतापूर्वक अवतारणा की।

भावों और भाषा को दृष्टि से इन महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के पश्चात् छंदों की बारी आई। क्रमशः नये छंदों में काव्य-रचना हुई और पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने 'छंद-बंधन' को तोड़कर भी सशक्त काव्य-रचना की।

चयनिका में संग्रहीत रचनाएँ आधुनिक कविता का यथेष्ट परिचय देती हैं। जिन प्रतिनिधि कवियों की कविताएँ संकलित की गयी हैं उनको परिचय-गाथा, मोटे रूप में, आधुनिक हिन्दी कविता की परिचय-गाथा है।

पं० श्रीधर पाठक

पाठकजी प्रकृति-सौंदर्य के उपासक थे। ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में ही इन्होंने सुंदर काव्य-रचना की। अँग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ की तीन रचनाओं के सुंदर पद्यानुवाद भी इन्होंने किये। सतर्क शब्द-चयन, सरस और प्रवाहपूर्ण भाषा-शैली इनकी कविताओं में परिलक्षित हैं।

श्री मैथिलीशरण गुप्त

कविता की भाषा को पूर्ण रूप से परिमार्जित करके आधुनिक बनाने का कार्य गुप्तजी ने किया। गुप्तजी की आरंभिक रचनाओं में 'भारत भारती' बहुत महत्वपूर्ण है। देशभक्ति और समाज के प्रति गंभीर संवेदना और सहानुभूति इसमें प्रकट हुई। भाव और भाषा दोनों की ही दृष्टि से गुप्तजी की रचनाओं ने हिन्दी कविता में युगांतर उपस्थित कर दिया। उच्च कोटि की काव्य-प्रतिभा के वे स्वामी हैं। पारिवारिक प्रेम को अत्यंत मनोरम रूप में कविता में अभिव्यक्त करने में वे अत्यधिक सफल हुए हैं। सहज बोलचाल की भाषा में अपूर्व रसानुभूति और मार्मिकता का समन्वय करने में उनकी लेखनी अद्वितीय है। हिन्दी-काव्य-साहित्य में उनकी रचनाएँ जगमगाते हुए दीपकों के समान हैं।

पं० रामनरेश त्रिपाठी

सेवा, त्याग और बलिदान की भावना को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करनेवाले कवियों में त्रिपाठीजी का विशेष महत्व है। प्रकृति का सौंदर्य-वर्णन भी उन्होंने बड़े माधुर्य के साथ किया है। 'मिलन' और 'पथिक' नामक काव्यों में त्रिपाठीजी की काव्य-प्रतिभा का मनोरम रूप प्रकट हुआ है। प्रवाहमयी भाषा और सरल सुबोध शैली में उदात्त भावनाओं की अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में हुई है।

पं० माखनलाल चतुर्वेदी

आत्मसमर्पण की अत्यंत प्रबल भावना को ओजस्वी भाषा में छंद-बद्ध करनेवाले कवियों में चतुर्वेदीजी अन्यतम हैं। राष्ट्रीयता और स्वदेशानुराग के गहरे रंग में रंगी हुई, बलिपथ की प्रेरणा देनेवाली 'एक भारतीय आत्मा' की वाणी में अद्भुत आकर्षण और प्रभविष्णुता विराजित है। अनूठी उपमाओं और लाक्षणिक अभिव्यक्तियों का उन्होंने प्रचुरता से उपयोग किया है।

स्वाधीनता आंदोलन के युग में उद्बोधन के सशक्त स्वर उनकी कविताओं में गूँजे थे। परवर्ती कविताओं में उनका कवि-हृदय प्रेम के स्वच्छंद बीहड़ पथ पर आराध्य से नानाविधि आँखमिचौनी खेलता हुआ बढ़ता गया है।

श्री जयशंकर 'प्रसाद'

स्वर्गीय 'प्रसाद' जी अप्रतिम-काव्य प्रतिभा लेकर अवतीर्ण हुए थे। अभिनव कल्पनाओं और अपूर्व अनुभूतियों का प्रकाश बिखेरनेवाली उनकी कविता है। प्रांजलता और प्रवाह क्षण भर के लिए भी उनकी पदावली से विलग नहीं होते। तीव्र रसानुभूति को चिंतन की पौष्टिकता प्रदान करके उन्होंने परंपरा के बंधनों को अद्भुत सुकुमारता से तोड़ा। प्रसादजी की कामायनी एक अपूर्व मौलिक काव्य-सृष्टि है।

श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

काव्य-रचना की सुदीर्घ परंपरा के प्रति विद्रोह करनेवाले सशक्त कवियों में 'निराला' जी अन्यतम हैं। भाषा का प्रवाह, तीव्र रसानुभूति और ओजस्विता से उनकी कविता मंडित है। 'राम की शक्ति पूजा' सदृश शक्तिशाली काव्य-रचना उन्होंने की है। भाषा पर उनका अद्भुत अधिकार है।

श्री सुमित्रानंदन पंत

सुकुमार कल्पना, लालित्यपूर्ण पद-योजना, और सरस भावनाओं का अपूर्व संयोग पंतजी की कविता में हुआ है। प्रकृति की शोभा और सौंदर्य की श्री की मनहर छवियाँ इन्होंने अंकित की हैं। दार्शनिक भावों की अभिव्यक्ति में चित्रमयता का कलात्मक समावेश करने की क्षमता उनकी परवर्ती रचनाओं में भलीभाँति प्रकट हुई है। निखिल मानवता के स्वर्णिम भविष्य की आशा-आकांक्षा के गीत उन्होंने रचे हैं।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

“सामाजिक विषमता, देश की पराधीनता और दुःख-दारिद्र्य से पीड़ित जन-जीवन के प्रति एक सशक्त विद्रोह की भावना लेकर 'नवीन' जी ने हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में पदार्पण किया। विद्रोह की भावना उनकी शताधिक कविताओं में शक्ति, प्रेरणा और उद्बोधन के स्वर लेकर अवतरित हुई।

भानुकता और मस्ती की प्रचुरता उनकी रचनाओं में भरी पड़ी है। कालांतर में उनकी काव्य-प्रतिभा 'रहस्य-उद्घाटन' के पथ पर आग बढ़ी और स्वभावतः चिंतन और अनुभूति की गंभीरता प्रधान हो गई।”

श्रीमती महादेवी वर्मा

करुणा, वेदना और आत्मविसर्जन के रस में डूबी हुई अपूर्व काव्य-माधुरी की सृष्टि महादेवीजी ने की है। मनुष्य मनुष्य के बीच जो रागात्मक संबंध है, उसे असौम्य की विरह-वेदना की पोथिका पर, आत्मार्पण से अभिविक्त करके, अलौकिक सारस्य प्रदान करने की उनकी साधना ही उनकी कविताओं में मुखरित है। विरह-वेदना की कोमलतम अनुभूतियाँ महादेवीजी के गीतों में सम्मोहक काव्य-सौंदर्य से अलंकृत हैं।

स्व० श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान

स्वर्गीया श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपूर्व लोकप्रियता की क्षमता रखनेवाली, सहज भाषा में अद्वितीय प्रेरणाशालिनी ओजस्वी कविताएँ लिखीं। “खूब लड़ी मर्दानो वह तो भाँसी वाली रानी थी”—उनकी ऐसी अमर कविता है जिसने एक समय हिन्दी भाषियों में सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त की थी। वे सहजतम भाषा में शक्तिशाली और मार्मिक काव्य-रचना में सिद्धहस्त थीं। सुकोमल अनुभूतियों की, और पारिवारिक चित्रों की भी बहुलता उनकी रचनाओं में है। अपूर्व ममतामय माता का हृदय, और देश की स्वाधीनता के लिए जूझ पड़नेवाली क्षत्राणी का वीर हृदय उनमें एकाकार

था। फलतः इन दोनों ही क्षेत्रों में उन्होंने जो भी पद्य-रचना की वह सच्ची अनुभूति की गरिमा से शोभित हुई।

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

नवजागरण का उद्घोष, भारत के महिमाशाली अतीत का चित्रण, और राष्ट्रीयता की भावना की चिंतनयुक्त ओजस्वी अभिव्यक्ति ने 'दिनकर' की काव्य-रचना को कीर्तिमती बनाया है। भाषा उनके छंदों का प्रसन्न अनुगमन करती है। विचारक होते हुए भी इनकी गंभीर कविताएँ रूक्ष नहीं हो पाई हैं। वीरत्व का दिग्दर्शन इनका प्रिय विषय है, और उत्साह एवं उद्धोधन के स्वर कवि के चिर साथी हैं।

श्री श्यामनारायण पाण्डेय

'हल्दीघाटी' तथा 'जौहर' नामक वीर रस के सुंदर काव्य रचकर पाण्डेयजी ने यह सिद्ध कर दिया है कि जनसाधारण के मन को अनुरंजित करनेवाली कविता ही विशेष लोकप्रियता प्राप्त करती है।

महाराणा प्रताप की कीर्तिगाथा भावनाओं के लिए प्रेरणा-पुंज के समान है। हल्दीघाटी में महाराणा के ऐतिहासिक संग्राम तथा जौहर में पद्मिनी-सहित वीर क्षत्राणियों की प्राणाहुति का वर्णन है।

श्री नरेन्द्र शर्मा

तीव्र रसात्मक अनुभूतियों के मदिर छंदों के रचनाकार के रूप में पं० नरेन्द्र शर्मा ने हिन्दी काव्य-क्षेत्र में पदार्पण किया। अभिव्यंजना शैली और अनुभूतियों में उत्तरोत्तर परिष्कार और विकास का परिचय विरले कवियों की रचनाओं में मिलता है। नरेन्द्रजी इन्हीं विरले कवियों की कोटि में हैं। इनकी परवर्ती रचनाओं में एक नया रंग है जो सात्त्विक होते हुए भी मोहन है। काव्य-रचना में नये प्रयोग इन्होंने सफलता के साथ किए हैं।

हिन्दी कविता का भविष्य

प्रस्तुत संग्रह की सीमाओं में अनेक श्रेष्ठ कवियों का परिचय देना दुष्कर है। जिनका उल्लेख हम कर चुके हैं उनके अतिरिक्त सर्वश्री भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, श्रीमती विद्यावती 'कोकिल', हरिवंश राय 'बच्चन', शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि ने श्रेष्ठ काव्य-रचना द्वारा हिन्दी के पद्य-साहित्य के गौरव को बढ़ाया है। अत्यंत आधुनिक कवियों में भी नये-नये प्रयोगों और नयी अभिव्यंजना शैलियों के दर्शन होते हैं। कविता के विषय अत्यंत व्यापक हो गए हैं। वैयक्तिकता से विशाल मानवता की ओर उन्मुख हमारा काव्य-साहित्य निश्चय ही एक उज्ज्वल भविष्य की ओर बढ़ रहा है।

साखी

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पाँय ।
 बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविंद दियो बताय ॥१॥
 यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान ।
 सीस दिए जो गुरु मिलें, तौ भी सस्ता जान ॥२॥
 बहे बहाए जात थे, लोक वेद के साथ ।
 पैंडा में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ ॥३॥
 करता था सो क्यों किया, अब करि क्यों पछिताय ।
 बोया पेड़ बबूर का, आम कहाँ ते खाय ॥४॥
 पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय ।
 एकै आखर पीउ का, पढ़ै सो पंडित होय ॥५॥
 ऊँचै कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होय ।
 सुबरन कलस सुरा भरा, साधू निन्दै सोय ॥६॥
 संत न छाँड़ै संतई, कोटिक मिलें असंत ।
 चंदन भुजंगम बैठिया, सीतलता न तजंत ॥७॥
 ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय ।
 अपना तन सीतल करै, औरन को सुख होय ॥८॥
 साँई ते सब होत है, बंदे ते कछु नाहि ।
 राई ते परबत करै, परबत राई माहि ॥९॥

कबिरा घास न निंदिए, जो पाँयन तर होय ।
 उड़िकै परै जो आँखि में, खरा दुहेला होय ॥१०॥
 पपिहा पन को ना तजै, तजै तो तन बेकाज ।
 तन छूटै तो कछु नहीं, पन छूटे है लाज ॥११॥
 सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर होय ॥
 जैसे बाती दीप की, कटे उँजैरा होय ॥१२॥
 माला फेरत जुग गया, गया न मन का फेर ।
 कर का मनका छाँड़ि दे, मन का मनका फेर ॥१३॥
 गोधन गजधन बाजिधन, और रतनधन खान ।
 जो आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान ॥१४॥
 जग में बैरी कोइ नहिं, जो मन सीतल होय ।
 यह आपा तूं डाल दे, दया करै सब कोय ॥१५॥
 खोद खाद धरती सहै, काटकूट बनराय ।
 कुटिल बचन साधू सहै, औरन सहा न जाय ॥१६॥
 प्रेम प्रीति से जो मिलै, तासों मिलिए धाय ।
 अंतर राखे जो मिलै, तासों मिलै बलाय ॥१७॥
 आछे दिन पाछे गये, हरि सों किया न हेत ।
 अब पछिताए होत का, चिड़ियाँ चुग गई खेत ॥१८॥
 एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाइ ।
 जो तूं सींचै मूल को, फूलै-फलै अघाइ ॥१९॥
 कबिरा, कहा गरबियो, ऊँचे देखि अवास ।
 काल्ह परचौ भुईं लेटणा, ऊपर जामै घास ॥२०॥
 यह ऐसा संसार है, जंसा सेमल-फूल ।
 दिन दस के ब्योहार को, भूठे रंग न भूल ॥२१॥

चलती चक्की देखकर, दिया कबीरा रोय ।
 दो पाटन क बीच में, साबित बचा न कोय ॥२२॥
 कह बहियाँ बल आपणी, छाँड़ि पराई आस ॥
 जाके आँगन है नदी, सो कत मरत पियास ॥२३॥
 ऐसा कोई ना मिला, सत नाम का मोत ।
 तन-मन सौंपे मिरग ज्यों, सुनै बधिक का गीत ॥२४॥
 सुख के माथे सिल परे, (जो) नाम हृदय से जाय ।
 बलिहारी वा दुख को, पल पल नाम रटाय ॥२५॥
 कबिरा गर्व न कोजिए, काल गहे कर केस ।
 ना जानौं कित मारि है, क्या घर क्या परदेस ॥२६॥
 रात गँवाई सोय करि, दिवस गँवायो खाय ।
 हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥२७॥
 आज कहै कल्ह भजूंगा, काल कहै फिर काल ।
 आज-काल के करत हो, औसर जासी चाल ॥२८॥
 काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब ।
 पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कव्व ॥२९॥
 कबीर नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय ।
 यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखौ आय ॥३०॥
 पाँचों नौबत बाजती, होत छतीसों राग ।
 सो मन्दिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग ॥३१॥
 माटी कहै कुम्हार से, तू क्या हूँवै मोहिं ।
 इक दिन ऐसा होइगा, मैं हूँवुंगी तोहिं ॥३२॥
 सहज मिलै सो दूध सम, माँगा मिलै सो पानि ।
 कह कबीर वह रक्त सम, जामें ऐँचातानि ॥३३॥

साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय
 सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥३४॥
 सूली ऊपर घर करै, विष का करै अहार
 ताको काल कहा करे, जो आठ पहर हुसियार ॥३५॥
 नाँव न जानौ गाँव का, बिन जाने कित जाँव
 चलता-चलता जुग भया, पाव कोस पर गाँव ॥३६॥
 कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहली गैल।
 पाँव न टिकै पिपीलिका, पंडित लादे बैल ॥३७॥

पद

का माँगूँ कुछ थिर न रहाई, देखत नैन चला जग जाई।
 इक लख पूत सवा लख नाती, ता रावन घर दिया न बाती।
 लंका कोट समँद-सी खाई, ता रावन की खबर न पाई।
 आवत संग न जात सँगाती, कहा भयो दर बाँधे हाथी।
 कहै 'कबीर' अंत की बारी, हाथ भाड़ जैसे चले जुवारी।

अभ्यास-संकेत

- १। साखी संख्या ६, १२, और १६ के अर्थ स्पष्ट रूप से समझाइए।
- २। कबीर ने सच्चे पंडित के लिए कौनसा ज्ञान अनिवार्य बताया है?
सच्चा साधु कैसा होना चाहिए?
- ३। “हाथ भाड़ जैसे चले जुवारी” में निहित मर्म को स्पष्ट कीजिए।
स्वाध्याय: आपको जो सबसे प्रिय लगे उन दस साखियों को कंठस्थ कीजिए।

पद

मैया कबहिं बढैगी चोटी ?

किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी ॥

तू जो कहत बल की बेनी ज्यों ह्वैहै लांबी मोटी ।

काढ़त, गुहत, न्हावत, ओछत, नागिन-सी भुईं लोटी ॥

काचो दूध पियावत पचि-पचि, देत न माखन रोटी ।

‘सूर’ स्याम चिरजिउ दोउ भैया, हरि-हलधर की जोटी ॥

(२)

सिखवत चलन जसोदा मैया ।

अरबराइ कर पानि गहावत डगमगाइ धरनी धरै पैयाँ ॥

कबहुँक सुंदर बदन बिलोकति उर आनंद भरि लेत बलैयाँ ।

कबहुँक बल को टेरि बुलावति इहि आँगन खेलो दोउ भैया ॥

कबहुँक कुल देवता मनावति, चिर जीवै मेरो बाल कन्हैया ।

‘सूरदास’ प्रभुं सब सुखदायक अति प्रताप बालक नंदरैया ॥

(३)

खेलत स्याम ग्वालन संग ।

सुबल हलधर अरु सिदामा करत नाना रंग ॥

हाथ तारी देत भाजत सबै करि करि होड़ ।
 बरज हलधर स्याम तुम जिन चोट लगिहै गोड़ ॥
 तब कह्यौ मैं दौरि जानत बहुत बल मो गात ।
 मोरि जोरी है स्निदामा हाथ मारे जात ॥
 तबहिं बोलि उठे स्निदामा जाहु तारी मारि ।
 आगे हरि पाछे स्निदामा धरयो स्याम हँकारि ॥
 जानिकै मैं रह्यो ठाढ़ो छुवत कहा जो मोहि ।
 'सूर' हरि खीभत सखा सों मनहिं कीनो कोहि ॥

(४)

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिभायो ।
 मोसों कहत मोल को लीनो तोहिं जसुमति कब जायो ॥
 कहा कहौं एहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जातु ।
 पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु ॥
 गोरे नंद जसोदा गोरो तुम कत स्याम शरीर ।
 चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर ॥
 तू मोहीं कौं मारन सीखी दाउहिं कबहुं न खीभै ।
 मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि सुनि रीभै ॥
 सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही को धूत ।
 'सूर' स्याम मोहिं गोधन की सों हौं माता तू पूत ॥

(५)

गहे अँगुरिया तात की नंद चलन सिखावत ।
 अरबराइ गिरि परत हैं कर टेकि उठावत ॥

बार बार बकि स्याम सों कछु बोल बकावत ।
 दुहुँघा दोउ दँतुली भई अति मुख छवि पावत ॥
 कबहुँ कान्ह कर छाँड़ि नंद पग द्वै करि धावत ।
 कबहुँ धरणि पर बैठि के मन महँ कछु गावत ॥
 कबहुँ उलटि चलें धाम को घुटहन करि धावत ।
 'सूर' स्याम मुख देखि महर मन हर्ष बढ़ावत ॥

(६)

खेलन अब मेरी जात बलैया ।
 जबहि मोहि देखत लरिकन सँग तबहि खिझत बल भैया ॥
 मोसों कहत तात बसुदेव को देवकी तेरी मैया ।
 मोल लियो कछु दे बसुदेव को करि करि जतन बटैया ॥
 अब बाबा कहि कहत नंद को जसुमति को कहै मैया ।
 ऐसेहि कहि सब मोहि खिझावत तब उठि चलो खिसैया ॥
 पाछे नंद सुनत हैं ठाढ़े हँसत हँसत उर लैया ।
 'सूर' नंद बलरामहि धिरयो सुनि मन हरख कन्हैया ॥

(७)

कमलनयन कछु करौ बियारी ।
 लुचुई लपसी सद्य जलेबी सोइ जँवहु जो लगै पियारी ॥
 घेवर मालपुआ मुतिलाडू सुधर सजूरी सरस सँवारी ।
 दूध बरा उत्तम दधि बाटी दाल मसूरी की रुचि न्यारी ॥
 आछो दूध औंठि धौरी को में ल्याई रोहिणि महतारी ।
 'सूरदास' बलराम स्याम दोउ जँवें जननि जाइ बलिहारी ॥

(८)

जैवत स्याम नंद की कनियाँ ।

कछुक खात कछु धरनि गिरावत छवि निरखत नंदरनियाँ ॥
 बरी बरा बेसन बहु भाँतिन व्यंजन बिबिध अनगनियाँ ।
 डारत खात लेत अपने कर रुचि मानत दधि दनियाँ ॥
 मिश्री दधि माखन मिश्रित करि मुख नावत छविधनियाँ ।
 आपुन खात नंद मुख नावत सो सुख कहत न बनियाँ ॥
 जो रस नंद यशोदा बिलसत सो नहिं तिहूँ भुवनियाँ ।
 भोजन करि नंद अँचवन कीन्ह्यौ माँगत 'सूर' जुठनियाँ ॥

(९)

चंद खिलौना लैहौँ मैया मेरी, चंद खिलौना लैहौँ ॥
 धौरी को पय पान न करिहौँ बेनी सिर न गुथैहौँ ।
 मोतिन माल न धरिहौँ उर पर, भँगुली कंठ न लैहौँ ॥
 जैहौँ लोट अबहिं धरनी पर तेरी गोद न ऐहौँ ।
 लाल कहैहौँ नंद बबा को तेरो सुत न कहैहौँ ॥
 कान लाय कछु कहत जसोदा दाउहिं नाहिं सुनैहौँ ।
 चंदा हू ते अति सुन्दर तोहिं नवल दुलहिषा ब्यैहौँ ॥
 तेरी सौंह मेरी सुन मैया अबहीं ब्याहन जैहौँ ।
 'सूरदास' सब सखा बराती नूतन मंगल गैहौँ ॥

(१०)

मैया मेरी, मैं नहिं माखन खायो ।

भोर भयो गैयन के पाछे मधुबन मोहिं पठायो ।
 चार पहर बंसीबट भटक्यो साँझ परे घर आयो ॥

में बालक बहियन को छोटी छीको केहि बिधि पायो ।
 ग्वाल बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो ॥
 तू जननी मन की अति भोरी इनके कह पतियायो ।
 जिय तेरे कछु भेद उपज है जान परायो जायो ॥
 यह ले अपनी लकुट कमरिया बहुतहि नाच नचायो ।
 'सूरदास' तब बिहँसि जसोदा लै उर कंठ लगायो ॥

(११)

अरी मोहिं भवन भयानक लागे, माई ! श्याम बिना ।
 देखहि जाइ काहि लोचन भरि नंद महरि के अँगना ॥
 लै जु गये अक्रूर ताहि को ब्रज के प्राणधना ।
 कौन सहाय करे घर अपने मेटे बिघन घना ॥
 काहि उठाइ गोद करि लीजै करि करि मन मगना ।
 "सूरदास" मोहन दरसन बिन सुख-संपति सपना ॥

(१२)

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो ।
 समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो ॥
 इक नदिया इक नार कहावत मैलोहि नीर भरो ।
 जब दोऊ मिलि एक बरन भये सुरसरि नाम परो ॥
 इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो
 गुन अवगुन पारस नहिं चितवै कंचन करत खरो ॥
 यह माया भ्रम जाल कहावै 'सूरदास' सगरो ।
 अब की बार मोहिँ पार उतारो नहिं प्रन जात टरो ॥

(१३)

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं ।
 ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात भरि जैहैं ॥
 घर के कहैं बेग ही काढ़ो भूत भये कोउ खैहैं ।
 जा प्रीतम से प्रीति घनेरी सोऊ देखि डरैहैं ॥
 कहैं वह ताल कहाँ वह सोभा देखत धूर उड़ैहैं ।
 भाई बंधु कुटुंब कबीला सुमिरि सुमिरि पछतैहैं ॥
 बिन गोपाल कोऊ नहि अपना जस कीरति रहि जैहैं ।
 सो तो 'सूर' दुर्लभ देवन को सतसंगति में पैहैं ॥

(१४)

छाड़ि मन हरि बिमुखन को संग ।
 जाके संग कुबुद्धि ऊपजै परत भजन में भंग ॥
 कागहि कहा कपूर खवाए स्वान न्हावए गंग ।
 खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषण अंग ॥
 ग्राहन पतित बान नहिँ बंधत रीतो करत निषंग ।
 'सूरदास' खल कारी कामरि चढ़त न दूजो रंग ॥

(१५)

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
 जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पर आवै ॥
 कमलनयन को छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै ।
 परम गंग को छाँड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै ॥
 जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यो क्यों करील फल खावै ।
 'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ॥

अभ्यास-संकेत

- १। “सूरदास का वात्सल्य-वर्णन विश्व-साहित्य में अद्वितीय है।”--
इस कथन की पुष्टि में आप उनके कौन-कौन से पद उद्धृत करेंगे ? इन पदों की कौन-कौन सी विशेषताएँ आपको आकर्षक लगती हैं ?
- २। सूरदास ने कृष्ण की बाल-लीलाओं का जो वर्णन किया है उनके आधार पर ‘कृष्ण का बाल्यकाल’ शीर्षक एक छोटा निबंध लिखिए।
- ३। पद संख्या १३ और १५ का भावार्थ लिखिए।

गोस्वामी तुलसीदास.....

१५३२—१६२३ ई०

सीता-स्वयंवर

चौपाई—

विश्वामित्र समय सुभ जानी । बोले अति सनेह मय बानी ॥
उठहु राम भंजहु भवचापू । मेटहु तात जनक-परितापू ॥
सुनि गुरुवचन चरन सिरुनावा । हरष विषाद न कछु उर आवा ॥
ठाढ़ भये उठि सहज सुभाए । ठवनि जुबा मृगराज लजाए ॥
दोहा—उदित उदय-गिरि-मंच पर, रघुबर बालपतंग ।
बिगसे संत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग ॥

चौपाई—

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी । बचन-नखत-अवलीन प्रकासी ॥
मानी महिप कुमुद सकुचान । कपटी भूप उलूक लुकाने ॥
भए बिसोक कोक मुनि देवा । बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा ॥
गुरुपद बंदि सहित अनुरागा । राम मुनिन्ह सन आयसु मांगा ॥
सहजहि चले सकल जग-स्वामी । मत्त - मंजु - बर कुंजर-गामी ॥
बलत राम सब पुर-नर-नारी । पुलक-पूरि तन भए सुखारी ॥
बंदि पितर सब सुकृत सँभारे । जौ कछु पुन्य प्रभाव हमारे ॥
तौ सिवधनु मृनाल की नाई । तोरहिं राम गनेस गोसाई ॥
दोहा—रामहिं प्रेम समेत लखि, सखिन्ह समीप बोलाइ ।
सीतामातु सनेह - बस, बचन कहे बिलखाइ ॥

चौपाई—

सखि सब कौतुक देखनिहारे । जेउ कहावत हितु हमारे ॥
कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाहीं । ए बालक अस हठ भल नाहीं ॥
रावन बान छुआ नहि चापा । हारे सकल भूप करि दापा ॥
सो धनु राजकुँअर-कर देहीं । बालमराल कि मंदर लेहीं ॥
भूपसयानप सकल सिरानी । सखि विधिगति कहि जाति न जानी ॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी । तेजवंत लघु गनिअ न रानी ॥
कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा । सोखेउ सुजस सकल संसारा ॥
रविमंडल देखत लघु लागा । उदय तासु त्रिभुवन तम भागा ॥

दोहा—मंत्र परम लघु जासु बस, बिधि-हरि-हर-सुर सर्व ।
महा-मत्त-गज-राज कहँ, बस कर अंकुस खर्व ॥

चौपाई—

काम कुसुम-धनुसायक लीन्हें । सकल भुवन अपने बस कीन्हें ॥
देवि तजिय संसय अस जानी । भंजब धनुष राम सुनु रानी ॥
सखी बचन सुनि भइ परतीती । मिटा बिषाद बढ़ी अति प्रीती ॥
तब रामहिं बिलोकि वैदेही । सभय हृदय बिनवति जेहि तेही ॥
मनहीं मन मनाव अकुलानी । होउ प्रसन्न महेस-भवानी ॥
करहु सुफल आपनि सेवकाई । करि हित हरहु चाप-गरुआई ॥
गननायक बरदायक देवा । आजु लगे कीन्हेउँ तव सेवा ॥
बार-बार सुनि बिनती मोरी । करहु चाप-गरुता अति थोरी ॥

दोहा—देखि देखि रघुवीर-तन, सुर मनाव धरि धोर ।
भरे बिलोचन प्रेम-जल, पुलकावली सरोर ॥

चौपाई—

नीके निरखि नयन भरि सोभा । पितुपनु सुमिरि बहुरि मन छोभा ॥
 अहह तात दारुन हठ ठानी । समुभक्त नहि कछु लाभ न हानी ॥
 सचिव सभय सिख देइ न कोई । बुध समाज बड़ अनुचित होई ॥
 कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा । कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा ॥
 बिधि केहि भाँति घरउँ उर धीरा । सिरिस-सुमन-किन बेधिय हीरा ॥
 सकल सभा कै मति भै भोरी । अब मोहि संभु-चाप-गति तोरी ॥
 निज जड़ता लोगन्ह पर डारी । होहु हरुअ रघुपतिहिं निहारी ॥
 अति परिताप सीयमन माहीं । लवनिमेष जुगसम चलि जाहीं ॥

दोहा—प्रभुहिं चितै पुनि चितै महि, राजत लोचन लोल ।
 खेलत मनसिज-मीन-जुग, जनु बिधुमंडल डोल ॥

चौपाई—

गिरा अलिनि मुखपंकज रोकी । प्रगट न लाज निसा अवलोकी ॥
 लोचन जल रह लोचन कोना । जैसे परम कृपन कर सोना ॥
 सकुची व्याकुलता बड़ि जानी । धरि धीरज प्रतीति उर आनी ॥
 तन मन बचन मोर पन साँचा । रघुपति पद-सरोज चितु राँचा ॥
 तौ भगवान सकल-उर-बासी । करिहहिं मोहि रघुबर कै दासी ॥
 जेहि कै जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलै न कछु संदेहू ॥
 प्रभु तन चितै प्रेमपन ठाना । कृपानिधान राम सब जाना ॥
 सिरिहिं बिलोकि तकेउ धनु कैसे । चितब गरुड़ लघु व्यालहिं जैसे ॥

दोहा—लखन लखेउ रघुबंस-मनि, तमकेउ हर कोदंड ।
 पुलकि गात बोले बचन, चरन चाँपि ब्रह्मंड ॥

बौपाई—

दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला । धरहु धरनि धरि घीर न डोला ॥
 राम चहहि संकरधनु तोरा । होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥
 चाप समीप राम जब आये । नर-नारिन्ह सुर सुकृति मनाये ॥
 सब कर संसय अरु अज्ञानू । मंद महीपन्ह कर अभिमानू ॥
 भृगुपति केरि गरब-गुरुआई । सुर-मुनि-वरन्ह केरि कदराई ॥
 सिय कर सोच जनक पछितावा । रानिन्ह कर दारुन दुख-दावा ॥
 संभुचाप बड़ बोहित पाई । चढ़े जाइ सब संग बनाई ॥
 राम-बाहु-बल-सिंधु अपारू । चहत पार नहि कोउ कनहारू ॥
 दोहा—राम बिलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि ।
 चितई सीय कृपायतन, जानी बिकल बिसेखि ॥

चौपाई—

देखी विपुल विकल बैदेही । निमिष बिहात कलप सम तेही ॥
 तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा । मुए करै का सुधा-तड़ागा ॥
 का बरषा जब कृषी सुखाने । समय' चूक पुनि का पछिताने ॥
 अस जिय जानि जानकी देखी । प्रभु पुलके लखि प्रीति बिसेखी ॥
 गुरुहि प्रणाम मनहि मन कीन्हा । अतिलाघव उठाइ धनु लीन्हा ॥
 दमकैउ दामिनि जिमि जब लयऊ । पुनि नभ धनुमंडल सम भयऊ ॥
 लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े । काहु न लखा देख सब ठाढ़े ॥
 तेहि छन राम मध्य धनु तोरा । भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा ॥

छंद

भरे भुवन घोर कठोर रव,
 रवि-बाजि तजि मारग चले ।

चिक्करहिं दिग्गज डोल महि,
 अहि कोल कूरम कलमले ।
 सुर असुर मुनि कर कान दोन्हें,
 सकल बिकल विचारहीं ।
 कोदंड खंडेउ राम तुलसी,
 जयति वचन उचारहीं ॥

सोरठा—

संकर चाप जहाज, सागर रघुबर-बाहु-बल ।
 बूड़ सो सकल समाज, चढ़े जो प्रथमहि मोह बस ॥

चौपाई—

प्रभु दोउ चापखंड महि डारे । देखि लोग सब भए सुखारे ॥
 कौसिक-रूप-पयोनिधि पावन । प्रेमवारि अवगाह सुहावन ॥
 राम-रूप-राकेस निहारी । बढ़त बीचि पुलकावलि भारी ॥
 बाजे नभ गहगहे निसाना । देवबधू नार्चहि करि गाना ॥
 ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा । प्रभुहिं प्रसंसहिं देहिं असीसा ॥
 बरषहिं सुमन रंग बहु माला । गावहिं किन्नर गीत रसाला ॥
 रही भुवन भरि जय जय बानी । धनुष-भंग-धुनि जात न जानी ॥
 मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी । भंजेउ राम संभुधनु भारी ॥
 दोहा—बंदी मागध सूत गन, बिरद बरहिं मतिधीर ।
 करहिं निछावरि लोग सब, हय-गज-धन-मनि-चीर ॥

चौपाई—

भाँभ मृदंग शंख सहनाई । भेरि ढोल दुंदुभी बजाई ॥
 बाजहिं बहु बाजने सुहाए । जहँ तहँ युवतिन मंगल गाए ॥

सखिन सहित हरषित अति रानी । सूखत धान परा जनु पानी ॥
जनक लहेउ सुख सोच बिहाई । पैरत थके थाह जनु पाई ॥
श्रीहत भये भूप धनु टूटे । जैसे दिवस दीप छबि छूटे ॥
सियहिय सुख बरनिय केहि भाँती । जनु चातक पाए जल स्वाती ॥
रामहि लषन बिलोकत कैसे । ससिहि चकोर किसोरक जैसे ॥
सतानंद तब आयसु दीन्हा । सीता गमन राम पहुँ कीन्हा ॥
दोहा—संग सखी सुंदरि चतुर, गावहि मंगलचार ।

गवनी बाल मराल गति, सुखमा अंग अपार ॥
सखिन मध्य सिय सोहति कैसी । छबिगन मध्य महाछबि जैसी ॥
कर सरोज जयमाल उठाई । बिस्वबिजय सोभा जनु छाई ॥
तन सकोच मन परम उछाहू । गूढ़ प्रेम लखि परै न काहू ॥
जाइ समीप राम छबि देखी । रहि जनु कुँवरि चित्र अवरेखी ॥
चतुर सखी लखि कहा बुझाई । पहिरावहु जयमाल सुहाई ॥
सुनत युगल कर माल उठाई । प्रेम-बिबस पहिराइ न जाई ॥
सोहत जनु युग जलज सनाला । ससिहि समीत देत जयमाला ॥
गावहि छबि अवलोकि सहेली । सिय जयमाल राम उर मेली ॥
श्लोका—रघुबर उर जयमाल, देखि देव बरषहि सुमन ।

सकुचे सकल भुवाल, जनु बिलोकि रवि कुमुदगन ॥

[रामचरितमानस सं]

सवैया

कागर-कीर ज्यों भूषन-चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यों काई ।
पिता-मातु प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई ॥
संग सुभामिनि भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुते पहुनाई ।
राजिवलोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई ॥१॥

नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूढ़त काढ़े ।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला सम होत अजाखुर बारिधि बाढ़े ॥
तुलसी जेहि के पद-पंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े ।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े ॥२॥

एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह दिखाइहौं जू ।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुभाइहौं जू ॥
तुलसी अवलंब न और कछू लरिका केहि भाँति जियाइहौं जू ।
बरु मारिए मोहि, बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥३॥

रावर दोष न पायँन को, पग-धूरि को भूरि प्रभाउ महा है ।
पाहन तें बन-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है ॥
पावन पाँय पखारिकै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है ।
तुलसी सुनि केवट के बरबैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥४॥

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच, बिलोकहु री सखि मोहि-सी ह्वै
मग जोग न, कोमल क्यों चलिहैं ? सकुचात मही पद-पंकज छुवै ॥
तुलसी सुनि ग्रामबधू बिथकीं, पुलकीं तन औ' चले लोचन च्वै ।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै ॥५॥

सीस जटा उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछी-सी भौहैं ।
तून-सरासन-बान धरे, तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं ॥
सादर बारहि बार सुभाय चितं तुम त्योँ हमरो मन मोहैं ।
पूछति ग्रामबधू सिय सों 'कहौ साँवरे-से सखि, रावरे को हँ' ॥६॥

[कवितावली से]

लंकादहन

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल जाल मानों,
 लंक लीलबे को काल रसना पसारी है ।
 कैधों व्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
 बीररस बीर तरवारि सी, उधारी है ॥
 तुलसी सुरेस-चाप कैधों दामिनी कलाप,
 कैधों चली मेरु तें कृसानु-सारि भारी है ।
 देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहें,
 'कानन उजारयो अब नगर प्रजारी है' ॥१॥

देखि ज्वाल जाल हाहाकार दसकंध सुनि,
 कह्यो 'धरो धरो' धाए बीर बलवान हैं ।
 लिए सूल सेल पास परिघ प्रचंड दंड,
 भाजन समीर धीर धरे धनुवान हैं ॥
 तुलसी समिध सौंज लंक-जज्ञकुंड लखि,
 जातुधान पुंगीफल, जव, तिल, धान हैं ।
 सुवा सो लँगूल बलमूल प्रतिकूल हवि,
 स्वाहा महा हाँकि हाँकि हनै हनुमान हैं ॥२॥
 [कवितावली से]

विनय के पद

में हरि पतित-पावन . सुने ।
 में पतित, तुम पतित-पावन, दोउ बानिक बने ॥

ब्याध, गनिका, गज, अजामिल, साखि निगमनि भने ।
 और अधम अनेक तारे, जात का पै गन ॥
 जानि नाम अजानि लीन्हें, नरक जमपुर मने ।
 दास तुलसी सरन आयो, राखिए अपने ॥

(२)

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भव भय दारुन ।
 नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुन ॥
 कंदर्प अगनित अमित छवि नव नील नीरज सुंदर ।
 पटपीत मानहु तड़ित रुचि सुचि नौमि जनक सुताबर ॥
 भजु दीनबंधु दिनेस दानव दैत्यवंस निकंदन ।
 रघुनंद आनंदकंद कौसलचंद दसरथनंदन ॥
 शिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदार अंग विभूषन ।
 आजानु-भुज शर-चाप-धर संग्राम-जित खर दूषन ॥
 इमि बदत 'तुलसीदास' शंकर शेष मुनि-मन-रंजन ।
 मम हृदय-कंज निवास करु कामादि खलदल-गंजन ॥

(३)

ऐसे राम दीन-हितकारी ।

अति कोमल करुनानिधान बिनु कारन पर-उपकारी ॥
 साधन-हीन दीन निज-अघ-बस सिला भई मुनि-नारी ।
 गृहते गवनि परसि पद पावन घोर सापते तारी ॥
 हिंसारत निषाद तामस बपु पसु समान बनचारी ।
 भेंटयो हृदय लगाइ प्रेमबस नहि कुल-जाति बिचारी ॥

यद्यपि द्रोह कियो सुरपति-सुत कहि न जाइ अति भारी ।
 सकल लोक अवलोकि सो कहत सरन गए भय टारी ॥
 बिहंग योनि आमिष अहार-पर गोध कौन ब्रतधारी ।
 जनक समान क्रिया ताकी निज कर सब भाँति सँवारी ॥
 अधम जाति सबरी जोषित जड़ लोक-वेद ते न्यारी ।
 जानि प्रीति दै दरस कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी ॥
 कपि सुग्रीव बंधु-भय-व्याकुल आयो सरन पुकारी ।
 सहि न सके दारुन दुख जन के हन्यो बालि सहि गारी ॥
 रिपु को अनुज विभीषन निसिचर कौन भजन अधिकारी ।
 सरन गए आगे ह्वै लीन्हों भेंट्यो भुजा पसारी ॥
 असुभ होइ जिनके सुमिरे ते बानर-रीछ बिकारी ।
 वेद विदित पावन किये ते सब महिमा नाथ तुम्हारी ॥
 कहँ लगि कहों दीन अगनित जिनकी तुम बिपति निवारी ।
 कलि-मल-प्रसित दास तुलसी पर काहे कृपा बिसारी ? ॥

[विनयपत्रिका से]

दोहे

आवत ही हर्षे नहीं, नैनन नहीं सनेह ।
 तुलसी तहाँ न जाइए, कंचन बरसै मेह ॥१॥
 तुलसी कबहुँ न त्यागिये, अपने कुल की रीति ।
 लायक ही सों कीजिए, व्याह बैर अह प्रीति ॥२॥
 तुलसी जस भवितव्यता, तैसी मिलै सहाय ।
 आप न आवे ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय ॥३॥

रैन को भूषन इन्दु है, दिवस को भूषन भान ।
 दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञान ॥४॥
 ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग ।
 त्याग को भूषन शांति-पद, तुलसी अमल अदाग ॥५॥
 तुलसी मिटै न मोहतम, किए कोटि गुन ग्राम ।
 हृदय कमल फूलै नहीं, बिनु रवि-कुल-रवि-राम ॥६॥
 सोई ज्ञानी सोई गुनी, जन सोई दाता ध्यानि ।
 तुलसी जाके चित भई, राग-द्वेष की हानि ॥७॥

[राम सतसई से]

अभ्यास-संकेत

- १। तुलसीदासजी ने सीता-स्वयंवर का जो वर्णन किया है, उसके आधार पर अपने शब्दों में सीता-स्वयंवर का वर्णन कीजिए ।
- २। “गिरा अलिनि..... ब्यालहि जैसे” —उक्त पंक्तियों की ससंदर्भ व्याख्या कीजिए ।
- २। “सखिन मध्य..... राम उर मेली” —उक्त पंक्तियों की ससंदर्भ व्याख्या कीजिए ।
- ४। “लंकादहन संबंधी संग्रहीत दोनों छंदों में वीर रस की उत्तम अभिव्यंजना है ।” —इस कथन की पुष्टि में पंक्तियाँ उद्धृत करते हुए अपने विचार लिखिए ।
 स्वाध्याय : विनयपत्रिका से उद्धृत प्रथम और द्वितीय कविताओं को कंठस्थ कीजिए । सातों दोहे भी कंठस्थ कीजिए ।

पद

पायो जी, मेंने नाम रतन धन पायो ।
 वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, करपा कर अपनायो ॥
 जनम-जनम की पूंजी पाई, जग में सभी खोवायो ।
 खरचै नहिं कोइ चोर न लेवे, दिन-दिन बढ़त सवायो ॥
 सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो ।
 'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, हरख हरख जस गायो ॥

(२)

बसो मेरे नैनन में नंदलाल ॥
 मोहनि मूरति साँवरि सूरति नैना बने बिसाल ।
 अधर सुधारस मुरली राजत उर बैजंती माल ॥
 छुद्र घंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल ।
 'मीरा' प्रभु संतन सुखदाई भक्त बछल गोपाल ॥

(३)

करमगति टारे नाहिं टरे ।
 सतवादी हरिचंद से राजा, नीच घर नीर भरे ।
 पाँच पांडु अरु कुन्ती द्रौपदी, हाड़ हिमालय गरे ॥
 जज्ञ किया बलि लेण इंद्रासन, सो पाताल धरे ।
 'मीरा' के प्रभु गिरिधर नागर, विष से अमृत करे ॥

(४)

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई ।
 दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई ॥
 भाई छोड्या बंधु छोड्या छोड्या सगा सोई ।
 साधु संग बैठ बैठ लोक लाज खोई ॥
 भगत देख राजी हुई जगत देख रोई ।
 अँसुवन जल सींच सींच प्रेम बेल बोई ॥
 दधि मथ घृत काढ़ लियो डार दई छोई ।
 राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई ॥
 अब तो बात फैल पड़ी जाणे सब कोई ।
 'मीरा' राम लगण लागी होणी होय सो होई ॥

(५)

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ॥
 साँप पिटारा राणा भेज्या मीरा हाथ दियो जाय ।
 न्हाय धोय जब देखण लागी सालिगराम गई पाय ॥
 जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह बनाय ।
 न्हाय धोय जब पीवण लागी हो अमर अँचाय ॥
 सूल सेज राणा ने भेजी दीज्यो मीरा सुलाय ।
 साँभ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल बिछाय ॥
 'मीरा' के प्रभु सदा सहाई राखे बिघन हटाय ।
 भजन भाव में मस्त डोलती गिरिधर पै बलि जाय ॥

(६)

मन रे परसि हरि के चरन ।
 सुभग सीतल कमल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरन ।
 जे चरन प्रह्लाद परसे, इन्द्र पदवी धरन ॥
 जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हों, राखि अपने सरन ।
 जिन चरन ब्रह्मांड भेंटचो, नख सिखौ श्री भरन ॥
 जिन चरन प्रभु परसि लीने, तरी गौतम धरन ।
 जिन चरन कालीहि नाथ्यो, गोप लीला करन ॥
 जिन चरन धारचो गोबर्द्धन, गरब मघवा हरन ।
 'दास मीरा' लाल गिरिधर, अगम तारन तरन ॥

अभ्यास-संकेत

- १। “भगवान के चरणों में सर्वस्व समर्पण की भावना की पावन तरलता से मीराँ की प्रेममयी वाणी का एक-एक शब्द अभिषिक्त है।” उक्त कथन की पुष्टि में उदाहरण देते हुए एक लघु निबंध लिखिए।
- २। पद संख्या ५ में मीरा ने किन घटनाओं का वर्णन किया है ?
 स्वाध्याय : द्वितीय, चतुर्थ और छठा पद कंठाग्र कीजिए।

रहीम अब्दुरहीम खानखाना सोलहवें शताब्दी ई० का उत्तरार्द्ध

दोहे

जिहि रहीम चित आपनों, कीन्हों चतुर चकोर ।
 निशिवासर लागो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥१॥
 को रहीम पर द्वार पर, जात न जिय पछितात ।
 संपति के सब जात हैं, विपति सबहि ले जात ॥२॥
 यों रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह शांति ।
 उवत चन्द्र जिहि भाँति सो, अथवत वाही भाँति ॥३॥
 कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत ।
 बिपति कसौटी जे कसे, तेई साँचे मीत ॥४॥
 तबही लग जीबो भलो, दीबो परै न धीम ।
 बिन दीबो जीबो जगत, हमहि न रुचै रहीम ॥५॥
 रहिमत देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि ।
 जहाँ काम आवै सुई, कहा करे तरवारि ॥६॥
 अमरबलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि ।
 रहिमत ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिए काहि ॥७॥
 रहिमत याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात ।
 नारायण हूँ को भयो, बावन आँगुर गात ॥८॥
 य रहीम घर घर फिरें, माँगि मधुकरी खाहि ।
 यारौ यारी छोड़िए, अब रहीम वे नाहि ॥९॥

हरि रहीम। ऐसी करी, ज्यों कमान सर पूर।
 खेंचि आपनी ओर को, डार दियो पुनि दूर ॥१०॥
 संतत संपति जानिके, सबको सब कुछ देइ।
 दीनबंधु बिन दीन की, को रहीम सुधि लेइ ॥११॥
 समय दश कुल देखि के, लोग करत सनमान।
 रहिमत दीन अनाथ को, तुम बिन को भगवान ॥१२॥
 सर सूखे पंछी उड़ें, औरे सरन समाहिं।
 दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहैं जाहि ॥१३॥
 दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
 जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होय ॥१४॥
 राम न जाते हरिन सँग, सीय न रावन साथ।
 जो रहीम भावी कतहुँ, होति आपने हाथ ॥१५॥
 कहु रहीम कैसे निभै, बेर केरु को संग।
 वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग ॥१६॥
 जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ तितही इतराय।
 प्यादे से फ़रज़ी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥१७॥
 खीरा को मुँह काटिके, मलियत लोन लगाय।
 रहिमत कड़ुए मुखन की, चाहिये यही सजाय ॥१८॥
 रहिमत राज सराहिए, शशि सम सुखद जो होय।
 कहा बापुरो भानु है, तप्यो तरैयन खोय ॥१९॥
 जे गरीब सों हित करें, धनि रहीम वे लोग।
 कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मितार्ई योग ॥२०॥
 जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
 चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥२१॥

बड़े पेट के भरन में, है रहीम दुख बाढ़ि ।
 यातें हाथी हहरि के, दए दाँत द्वै काढ़ि ॥२२॥
 ओछो काम बड़े करें, तौ न बड़ाई होय ।
 ज्यों रहीम हनुमंत को, गिरिधर कहें न कोय ॥२३॥
 जो बड़ेन को लघु कहौ, नहि रहीम घटि जाहि ।
 गिरिधर मुरलीधर कहै, कछु दुख मानत नाहि ॥२४॥
 यह रहीम निज संग ले, जनमत जगत न कोय ।
 बैर प्रीति अभ्यास यश, होत होत ही होय ॥२५॥
 बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि ।
 हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि ॥२६॥
 प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छवि कहाँ समाय ।
 भरी सराय रहीम लखि, आप पथिक फिरि जाय ॥२७॥
 कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भौ धीम ।
 केहि की प्रभुता नहि घटो, पर घर गए रहीम ॥२८॥
 सब कोऊ सब सों करै, राम जुहार सलाम ।
 हित रहीम तब जानिए, जा दिन अँटकै काम ॥२९॥
 ज्यों रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय ।
 बारे उजियारो लगै, बड़े अँधेरो होय ॥३०॥
 छोटेन सों सोहें बड़े, कहि रहीम यहि लेख ।
 सहसन को हय बाँधियत, लै दमरी की मेख ॥३१॥
 रहिमत कबहुँ बड़ेन के, नाहि गर्व को लेश ।
 भार धरें संसार को, तऊ कहावत शेष ॥३२॥
 रहिमत नोचन संग बसि, लगत कलंक न काहि ।
 दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहि सब ताहि ॥३३॥

रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ ।
 जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥३४॥ ।
 रहिमन लाख भली करौ, अगुनी अगुन न जाय ।
 राग सुनत पय पियत हू, साँप सहज धरि खाय ॥३५॥
 जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह ।
 धरती ही पर परत सब, शीत घाम औ मेह ॥३६॥
 बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय । ।
 रहिमन बिगरे दूध को, मथै न माखन होय ॥३७॥
 मथत मथत माँखन रहै, दही मही बिलगाय ।
 रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय ॥३८॥
 रहिमन निज मन की व्यथा, मनहीं राखौ गोय ।
 सुनि अठिलैहें लोग सब, बाँटि न लैहें कोय ॥३९॥
 रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर ।
 जब नोके दिन आइहें, बनत न लगि हें देर ॥४०॥
 रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहि ।
 उनसे पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहि ॥४१॥
 धन दारा अरु सुतन में, रहत लगाए चित्त ।
 वयों रहीम खोजत नहीं, गाढ़े दिन को मित्त ॥४२॥
 खैर खून खाँसी खुशी, बैर प्रीति मधु पान ।
 रहिमन दाबे ना दबे, जानत सकल जहान ॥४३॥
 काज परे कछु और है, काज सरे कछु और ।
 रहिमन भाँवर के भये, नदी सेरावत मौर ॥४४॥
 अब रहीम मुसकिल परी, गाढ़े दोऊ काम ।
 पाँचे से तो जग नहीं, भूठे मिलै न राम ॥४५॥

रहिमन बिपदा हू भली, जो थोरे दिन होय ।
 हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥४६॥
 साधु सराहै साधुता, यती जोखिता जान ।
 रहिमन साँचे सूर को, बैरी करै बखान ॥४७॥
 भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप ।
 रहिमन गिरि ते भूमि लौं, लखो तो एकै रूप ॥४८॥
 छिमा बड़न को चाहिए, छोटेन को उतपात ।
 का रहीम हरि को घटचो, जो भृगु मारी लात ॥४९॥

सोरठा

रहिमन मोहिं न सुहाय, अमी पियावत मान बिन ।
 जो विष देय बुलाय, प्रेम सहित मरिबो भलो ॥

[रहीम सतसई से]

अभ्यास-संकेत

- १। “रहीम के दोहों में एक तीव्र अनुभूति और असाधारण मार्मिकता पाई जाती है” ।—इस कथन के समर्थन में दोहों का उल्लेख करते हुए एक लघु निबंध लिखिए ।

स्वाध्याय : रहीम के उपर्युक्त दोहों को एक बार अकेले पढ़िए और जो दोहे आपको सबसे अधिक प्रिय लगें उनपर चिन्ह लगाकर उन्हें कंठस्थ कीजिए ।

सवैया

मानुस हौं तो वही ‘रसखानि’ बसों ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पसु हौं तौ कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँभारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन ॥

(२)

वा लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँपुर को तजि डारौं ।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधि को सुख नंद की गाइ चराइ बिसारौं ॥
‘रसखानि’ कबौं इन आँखिन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं ।
कोटिन हूँ कलधौत के धाम करीर के कुंजन ऊपर वारौं ॥

(३)

आयो हुतो नियरे ‘रसखानि’ कहा कहूँ तू न गई वहि ठैया ।
या ब्रज में सिगरी बनिता सब वारति प्राननि लेत बलैया ॥
कोऊ न काहू की कानि करै कछु चटक सो जु करयो जदुरैया ।
गाइगो तान जमाइगो नेह रिभाइगो प्रान चराइगो गैया ॥

(४)

सेस गनेस महेस दिनस सुरेसहु जाहि निरंतर गावैं ।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावैं ..

जाहि हिये लखि आनंद ह्वै जड़ मूढ़ हिए 'रसखानि' कहावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछियाँ भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥

अभ्यास-संकेत

- १। प्रथम और द्वितीय सवैयाँ में कवि ने अपने हृदय के जिन भावों को व्यक्त किया है, उन्हें स्पष्ट रूप से अपने शब्दों में लिखिए।
- २। चतुर्थ सवैया की अंतिम पंक्ति में कौनसा शब्दालंकार है ?

स्वाध्याय : पहले और दूसरे छंदों को कंठस्थ कीजिए और सस्वर दुहराने का अभ्यास कीजिए।

दोहे

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय ।
जा तन की भाँईं परै, स्याम हरित टुति होय ॥१॥
सोस मुकुट, कटि काछनी, कर-मुरली उर-माल ।
यहि बानक मों मन सदा, बसौ बिहारी लाल ॥२॥
या अनुरागी चित्त को, गति समुझै नहिं कोय ।
ज्यों-ज्यों बूड़े स्याम रँग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय ॥३॥
सवन कुंज-झाया सुखद, सीतल सुरभि-समीर ।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वहि जमुना के तीर ॥४॥
नाचि अचानक ही उठे, बिनु पावस बन मोर ।
जानति हौं, नंदित करी, यहि दिसि नंदकिसोर ॥५॥
करि फुल्ले को आचमन, मीठो कहत सराहि ।
ऐ गंधी, मति-मंद तू, इतर दिखावत काहि ॥६॥
जिन दिन देखे वै कुसुम, गई सु बीति बहार ।
अब अलि रही गुलाब में, अपत कँटीलो डार ॥७॥
जप, माला, छाया, तिलक, सरै न एकौ काम ।
मन-काँचै नाचै वृथा, साँचै राँचै राम ॥८॥
कैसे छोटे नरन ते, सरत बड़नि के काम ?
मद्यो दमामा जात है, कहिँ चूहे के चाम ? ॥९॥
अति अगाध अति ओथरो, नदी कूप सर बाय ।
सो ताको सागर जहाँ, जाकी प्यास बुझाय ॥१०॥

घर-घर डोलत दीन हूँ, जन-जन जाँचत जाइ ।
 दिए लोभ चसमा चखनि, लघु पुनि बड़ो लखाइ ॥११॥
 बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमान ।
 भलो भलो कहि छोड़िए, खोटे ग्रह जप दान ॥१२॥
 नर की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोइ ।
 जेतो नीचे हूँ चलै, तेतो ऊँचो होइ ॥१३॥
 यही आस अँटक्यौ रहै, अलि गुलाब के मूल ।
 हूँहैं फेरि बसंत ऋतु, इन डारिन वे फूल ॥१४॥
 दिन दस आदर पाइ कै, करि लै आप बखान ।
 जौ लगि काग सराध पछ, तौ लगि तव सनमान ॥१५॥
 वे न इहाँ नागर वड़े, जिन आदर तो आब ।
 फूल्यो अनफूल्यो भयो, गँवई गाँव गुलाब ॥१६॥
 कर लै सूँधि सराहि कै, सबै रहै गहि मौन ।
 गंधी अंध गुलाब को, गँवई गाहक कौन ॥१७॥
 कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय ।
 उहि खाए बौराय जग, इहि पाए बौराय ॥१८॥
 [बिहारी सतसई से]

अभ्यास-संकेत

- १। बिहारी के दोहों के संबंध में कहा गया है कि “देखन में छोटे लगें धाव करैं गंभीर”। इस कथन की सोदाहरण पुष्टि कीजिए।
- २। बिहारी और रहीम के दोहों की तुलना कीजिए और कारण देते हुए यह बतलाइए कि आपको किसके दोहे अधिक रुचिकर प्रतीत होते हैं।

स्वाध्याय : ३, ४, ६, ९, १४ और १७ संख्यक दोहों को कंठस्थ कीजिए।

गिरिधर कविराय

ज० १७१३ ई०—मृ० १

कुंडलिया

साँईं बैर न कीजिए, गुरु पंडित कवि यार ।
 बेटा वनिता पँवरिया, यज्ञ करावनहार ॥
 यज्ञ करावनहार, राजमंत्री जो होई ।
 विप्र पड़ोसी वैद्य, आप को तपै रसोई ॥
 कह गिरिधर कविराय, युगन ते यह चलि आई ।
 इन तेरह सों तरह, दिए बनि आवै साईं ॥१॥

दौलत पाय न कीजिए, सपने हू अभिमान ।
 चंचल जल दिन चारि को, ठाँउ न रहत निदान ॥
 ठाँउ न रहत निदान, जियत जग में यश लीजै ।
 मोठे बचन सुनाय, विनय सब ही की कीजै ॥
 कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत ।
 पाहुन निशिदिन चारि, रहत सबही के दौलत ॥२॥

साँईं अवसर के पड़े, को न सहै दुख द्वंद ।
 जाय बिकाने डोम घर, वै राजा हरिचंद ॥
 वै राजा हरिचंद, करें मरघट रखवारी ।
 धरे तपस्वी वेष, फिरे अर्जुन बलधारी ॥
 कह गिरिधर कविराय, तपै वह भीम रसोई ।
 को न करै घटि काम, परे अवसर के साईं ॥३॥

साँईं ये न विरोधिए, छोट बड़े सब भाय ।
 ऐसे भारी वृक्ष को, कुल्हरी देत गिराय ॥
 कुल्हरी देत गिराय, मार के जमीं गिराई ।
 टूक टूक कै काटि, समुद में देत बहाई ॥
 कह गिरिधर कविराय, फूट जेहि के घर आई ।
 हिरणाकश्यप, कंस, गए बलि, रावण साँई ॥४॥

लाठी में गुण बहुत है, सदा राखिए संग ।
 गहिर नदी, नारा जहाँ, तहाँ बचावै अंग ॥
 तहाँ बचावै अंग, भपटि कुत्ता कहँ मारै ।
 दुश्मन दावागीर, होयँ तिनहूँ को भारै ॥
 कह गिरिधर कविराय, सुनो हो धूर के बाठी ।
 सब हथियारन छाँड़ि, हाथ महँ लीजै लाठी ॥५॥

कमरी थोरे दाम की, बहुतै आवै काम ।
 खासा मलमल बाफता, उनकर राखै मान ॥
 उनकर राखै मान, बुंद जहँ आड़े आवै ।
 बकुचा बाँधै मोट, राति को भारि बिछावै ॥
 कह गिरिधर कविराय, मिलत है थोरे दमरी ।
 सब दिन राखै साथ, बड़ी मर्यादा कमरी ॥६॥

गुन के गाहक सहस नर, विनु गुन लहै न कोय ।
 जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय ॥
 शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबे सुहावन ।
 दोऊ को एक रंग, काग सब भए अपावन ॥

कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के ।
 बिनु गुन लहे न कोय, सहस नर गाहक गुन के ॥७॥
 साँई सब संसार में, मतलब का व्यवहार ।
 जब लग पैसा गाँठ में, तब लग ताको यार ॥
 तब लग ताको यार, यार सँग ही सँग डोलें ।
 पैसा रहा न पास, यार मुख स नहि बोलें ॥
 कह गिरिधर कविराय, जगत यहि लेखा भाई ।
 करत बेगरजी प्रीति, यार बिरला कोई साँई ॥८॥

रहिए लटपट काटि दिन, बर घामें माँ सोय ।
 छाँह न बाकी बैठिये, जो तर पतरो होय ॥
 जो तर पतरो होय, एक दिन धोखा देहै ।
 जा दिन बहै बयारि, टूटि तब जर से जैहै ॥
 कह गिरिधर कविराय, छाँह मोटे को गहिए ।
 पाता सब भरि जाय, तऊ छाया में रहिए ॥९॥

पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम ।
 दोऊ हाथ उलीचिए, यही सयानो काम ॥
 यही सयानो काम, राम को सुमिरन कीजै ।
 परस्वारथ के काज, शीश आगे धरि दीजै ॥
 कह गिरिधर कविराय, बड़ैन की याही बानी ।
 चलिए चाल सुचाल, राखिए अपनो पानी ॥१०॥

राजा के दरबार में, जैये समया पाय ।
 साँई तहाँ न बैठिए, जहँ कोउ देय उठाय ॥

जहं कोउ देय उठाय, बोल अनबोलें रहिए ।
 हँसिए नहीं हहाय, बात पूछे ते कहिए ॥
 कह गिरिधर कविराय, समय सों कीजै काजा ।
 अति आतुर नहि होय, बहुरि अनखैं राजा ॥११॥

बिना बिचारे जो करै, सो पीछे पछिताय ।
 काम बिगारै आपनो, जग में होत हँसाय ॥
 जग में होत हँसाय, चित्त में चैन न पावै ।
 खान पान सन्मान, राग रँग मनहि न भावै ॥
 कह गिरिधर कविराय, दुःख कछु टरत न टारे ।
 खटकत है जिय माँहि, कियो जो बिना बिचारे ॥१२॥

बोती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेइ ।
 जो बनि आवै सहज में, ताही में चित देइ ॥
 ताही में चित देइ, बात जोई बनि आवै ।
 दुर्जन हँसै न कोइ, चित्त में खता न पावै ॥
 कह गिरिधर कविराय, यहै करु मन परतीती ।
 आगे को सुख समुझि, होइ बीती सो बीती ॥१३॥

साँई अपने भ्रात को, कबहुँ न दीजै त्रास ।
 पलक दूर नहि कीजिए, सदा राखिए पास ॥
 सदा राखिए पास, त्रास कबहुँ नहि दीजै ।
 त्रास दियो लंकेश, ताहि की गति सुनि लीजै ॥
 कह गिरिधर कविराय, राम सों मिलयो जाई ।
 पाय विभीषण राज, लंकपति बाज्यो साँई ॥१४॥

अभ्यास-संकेत

- १। चतुर्थ कुंडलिया में 'घर की फूट' के संबंध में जो बातें कही गई हैं उनका विस्तार करते हुए यह सिद्ध कीजिए कि 'आपस की फूट सर्वनाश की जड़ है'।
- २। "भाषा का प्रवाह, दैनिक जीवन के अनुभव की बातें, व्यावहारिक नीति की उक्तियाँ, और प्रभावशाली सहज शैली, गिरिधर की कविता में समन्वित हैं।"—इस कथन का आशय उदाहरण देते हुए स्पष्ट कीजिए।

स्वाध्याय : १, २, ७, १० और १२ संख्यक कुंडलिया कंठस्थ कीजिए।

सब उन्नति को मूल

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।
 बिन निज भाषा-ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥१॥
 अँग्रेजी पढ़िके जदपि, सब गुन होत प्रवीन ।
 पै निज भाषा-ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन ॥२॥
 उन्नति पूरी है तबहि, जब घर उन्नति होय ।
 निज शरीर उन्नति किए, रहत मूढ़ सब कोय ॥३॥
 निज भाषा उन्नति बिना, कबहुँ न ह्वै हैं सोय ।
 लाख उपाय अनेक यों, भले करो किन कोय ॥४॥
 इक भाषा इक जीव इक, मति सब घर के लोग ।
 तबै बनत है सबन सों, मिटत मूढ़ता सोग ॥५॥
 और एक अति लाभ यह, यामे प्रगट लखात ।
 निज भाषा में कीजिए, जो विद्या की बात ॥६॥
 तेहि सुनि पावै लाभ सब, बात सुनै जो कोय ।
 यह गुन भाषा और महँ, कबहुँ नाही होय ॥७॥
 बिबिध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार ।
 सब देसन से लै करहु, भाषा माहि प्रचार ॥८॥
 भारत में सब भिन्न अति, ताहीं सों उत्पात ।
 बिबिध देस मतहू बिबिध, भाषा बिबिध लखात ॥९॥

सब मिल तासों छाँड़ि कै, दूजे और उपाय ।
उन्नति भाषा की करहु, अहो भ्रातगन आय ॥१०॥

पदावली

(१)

ब्रज के लता पता मोहि कीजै ।
गोपी पद-पंकज पावन की रज जामें सिर भीजै ।
आवत जात कुंज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै ।
श्रीराधे राधे मुख यह बर हरीचंद को दीजै ।

(२)

सखि हम काह करैं कित जायँ ।
बिनु देखे वह मोहनि मूरति नैना नाहि अघायँ ॥
बैठत उठत सयन सोवत निस चलत फिरत सब ठौर ।
नैनन तें वह रूप रसीलो टरत न इक पल और ॥
सुमिरन वही ध्यान उनको ही मुख में उनको नाम ।
दूजी और नाहि गति मेरी बिनु मोहन घनश्याम ॥
सब ब्रज बरजौ परिजन खीभौ हमरे तो हरि प्रान ।
हरीचंद हम मगन प्रेम-रस सूभत नाहि न आन ॥

(३)

धनि ये मुनि बृंदावनवासी ।
दरसन हेतु बिहंगम ह्वै रहे मूरति मधुर उपासी ॥
नव कोमल दल पल्लव द्रुम, पै मिलि बैठत हैं आई ।
नैननि मूँदि त्यागि कोलाहल सुनिहि बेनु-धुनि माई ॥

प्राननाथ के मुख की बानी करहिं अमृतरस पान ।
हरीचंद हमको सोउ दुरलभ यह बिधि की गति आन ॥

(४)

भई सखि ये अँखियाँ बिगरेल ।
बिगरि परीं मानति नहिं देखें बिना साँवरो छैल ॥
भई मतवारि धरति पग डगमग नहिं सूझति कुल-गैल ।
तजि कै लाज, साज गुरुजन की, हरि की भई रखैल ॥
निज चबाव सुनि औरहुँ हरखति करति न कुछ मन मैल ।
हरीचंद सब संग छाँड़ि कै करहिं रूप की सैल ॥

अभ्यास-संकेत

- १। “निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।”—इस उक्ति को शीर्षक मानकर एक निबंध लिखिए और समझाइए कि किस प्रकार समस्त उन्नति का आधार ‘निज-भाषा’ की उन्नति है ।
- २। भारतेन्दु हरिश्चंद्र के संबंध में इस संग्रह की भूमिका में जो कहा गया है उसे पढ़कर उनकी उक्त रचनाओं को पुनः पढ़िए और फिर ‘भारतेन्दु हरिश्चंद्र’ पर अपने शब्दों में एक छोटा सा लेख लिखिए ।
- ३। द्वितीय और तृतीय पदों की व्याख्या करते हुए यह बताइए कि इस प्रकार के प्रेम-भक्ति-पूर्ण भाव और किसकी कविताओं में आपने पाए ।

घन-विनय

हे वारिद ! नव जलधर ! हे धाराधर नाम !
 हे पयोद ! पय सुंदर, हे अतिशय अभिराम ! !
 हे प्रानद आनंद-घन, हे जगजीवन-सार !
 हे सजीव जीवन-धन, हे त्रिभुवन-आधार ! !
 हे रनबंक धनुषधर, सर तरकस जलधार !
 ग्रीषम-विषम कलुस-हर, रवि-कर प्रखर प्रहार ! !
 हे गिरि-तुंग-शिखर-चर, हे निर्भय नभ-यान !
 हे नित-नूतन-तन-धर, हे पवमान विमान ! !
 तुम भारत के धन, बल, गुन, गौरव, आधार ।
 तुम ही तन, तुम ही मन, तुम प्रानन पतवार ॥
 परम पुरातन तुम्हरो भारत सँग सत प्रेम ।
 जिहि जानत जम सगरौ, मानत निहिचल नेम ॥
 सो तुमकों नहिं चाहियत छाँड़न हित संबंध ।
 अटल सदैवहिं कहियत पूरन प्रकृति प्रबंध ॥
 सोचहु सुमिरि सुजस निज, हे उज्ज्वल जसभौन !
 इन दुखियनहिं तुमहिं तज है घन अवलंबन कौन ! !
 पठवहु परम सुहावनि पावनि पूरब पौन ।
 सुभ-संदेश सुनावनि, जल भर लावनि जौन ॥

स्याम घटा लै धावहु, छावहु नभहि दवाय ।
 दिव्य छटा फैलावहु, लावहु दलहि सजाय ॥
 घोरहु घुमड़ि घमंकहु, घेरहु दसहु दिसान ।
 दामिनि द्रुतहि दमंकहु, धारहु धनुस निसान ॥
 करखा कुपित गवावहु, जिहि सुनि हिय हरसाय ।
 बरखा बिपुल मचावहु, जिहि लखि जिय भरि जाय ॥

गरजन गहन सुनावहु, रन-व्रत-बीर समान ॥
 लरजन ललित दिखावहु, बाँधहु धुर धुरवान ॥
 मुग्ध मयूर नचावहु निज घन घोर सुनाय ॥
 दादुर भेक बुलावहु, निज अभिषेक कराय ॥

कहुँ-कहुँ कड़कि सुनावहु, बिज्जु-पतन ठनकार ।
 कहुँ मृदु श्रवन करावहु, झिल्ली-गन झनकार ॥
 पोखर नदी तड़ागन, बागन बगियन बीच ।
 गैल गली घर आँगन भरहु मचावहु कीच ॥

कजरी मधुर मलारन की धुनि पुनि सुनवाउ ।
 मंगल मोर मनावन की चरचा चलवाउ ॥
 करि कृतकृत्य किसानन, संबतसर सरसाउ ।
 सींचि सस्यतून धानन, तब निज धाम सिधाउ ॥

समै समै पुनि आवहु, पुनि जावहु, इहि रीति ।
 सहज सुभाग बढ़ावहु, गहि मग प्राकृत नीति ॥
 प्रथित प्रेम-रस-पागहु, पूरन प्रनय प्रतीति ।
 सदा सरस अनुरागहु, हे घन ! विनय विनीति ॥

अभ्यास-संकेत

- १। एक-एक वाक्य में निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए :--
 - (क) घन को धाराधर क्यों कहा जाता है ?
 - (ख) " " प्रानद " " " ?
 - (ग) " " जगजीवन-सार " " ?
 - (घ) " " रनबंक-धनुषधर क्यों कहा गया है ?
- २। कवि ने किस भावना से प्रेरित होकर, और किस उद्देश्य से घन से वित्त की है ? स्पष्ट रूप से समझाइए।
- ३। "पठवहु परम सुहावनि.....से.....मचावहु कीच" तक की सोलह पक्तियों में चित्रित वर्णन को अपने शब्दों में लिखिए।

मनुष्यता

(१)

विचार लो कि मर्त्य हो न मृत्यु से डरो कभी,
मरो, परंतु यों मरो कि याद जो करें सभी ।
हुई न यों सु-मृत्यु तो वृथा मरे, वृथा जिए,
मरा नहीं वही कि जो जिया न। आपक लिए ।
यही पशु-प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ॥

(२)

उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती,
उसी उदार से धरा कृतार्थ भाव मानती ।
उसी उदार की सदा सजीव कीर्ति कूजती ;
तथा उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती ।
अखंड आत्मभाव जो असीम विश्व में भरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मर ॥

(३)

क्षुधार्त रंतिदेव ने दिया करस्थ थाल भी,
तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थिजाल भी ।

उशीनर क्षितीश ने स्वमांस दान भी किया,
 सहर्ष वीर कर्ण ने शरीर-चर्म भी दिया ।
 अनित्य देह के लिए अनादि जीव क्या डरे ?
 वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ॥

(४)

सहानुभूति चाहिए, महाविभूति है यही ;
 वशीकृता सदैव है बनी हुई स्वयं मही ।
 विरुद्धवाद बुद्ध का दया-प्रवाह में बहा,
 विनीत लोकवर्ग क्या न सामने झुका रहा ?
 अहा ! वही उदार है परोपकार जो करे,
 वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ।

(५)

रहो न भूल के कभी मदांध तुच्छ वित्त में,
 सनाथ जान आपको करो न गर्व चित्त में ।
 अनाथ कौन है यहाँ ? त्रिलोकनाथ साथ हैं,
 दयालु दीनबंधु के बड़े विशाल हाथ हैं ।
 अतीत भाग्यहीन है अधीर भाव जो करे,
 वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ॥

(६)

अनंत अंतरिक्ष में अनंत देव है खड़े,
 समक्ष ही स्वबाहु जो बंठा रहे बड़े-बड़े ॥

परस्परावलंब से उठो तथा बढ़ो सभी,
 अभी अमर्त्य-अंक में अपंक हो चढ़ो सभी ।
 रहो न यों कि एक से न काम और का सरे,
 वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ॥

(७)

“मनुष्य मात्र बंधु हैं” यही बड़ा विवेक है,
 पुराणपुरुष स्वभू पिता प्रसिद्ध एक है ।
 फलानुसार कर्म के अवश्य बाह्य भेद हैं,
 परंतु अंतरैक्य में प्रमाणभूत वेद हैं ।
 अनर्थ है कि बंधु ही न बंधु की व्यथा हरे,
 वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ॥

(८)

चलो अभीष्ट मार्ग में सहर्ष खेलते हुए,
 विपत्ति, विघ्न जो पड़ें उन्हें ढकेलते हुए ।
 घटे न हेलमेल हाँ, बढ़े न भिन्नता कभी,
 अतर्क एक पंथ के सतर्क पंथ हों सभी ।
 तभी समर्थभाव है कि तारता हुआ तरे,
 वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे ॥

साकेत नगरी

देख लो साकेत नगरी है यही,
 स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही ।
 केतु-पट अंचल सदृश हैं उड़ रहे,
 कनक-कलशों पर अमर-दृग जुड़ रहे ।

सोहती हैं विविध-शालाएँ बड़ी,
छत उठाए भित्तिर्याँ चित्रित खड़ी ।
गेहियों के चारु चरितों की लड़ी,
छोड़ती है छाप, जो उन पर पड़ी !

स्वच्छ, सुंदर और विस्तृत घर बने,
इंद्र-धनुषाकार तोरण हैं तने ।
देव-दंपति अट्ट देख सराहते,
उतर कर विश्राम करना चाहते ।

फूल-फल कर, फँल कर जो हैं बड़ीं,
दीर्घ छज्जों पर विविध बेलें चड़ीं ।
पौर कन्याएँ प्रसून-स्तूप कर,
वृष्टि करती हैं यहीं से भूप पर ।

फूल-पत्ते हैं गवाक्षों में कढ़े,
प्रकृति से ही वे गए मानो गढ़े ।
दामिनी भीतर दमकती है कभी,
चंद्र की माला चमकती है कभी ।

सर्वदा स्वच्छंद छज्जों के तले,
प्रेम के आदर्श पारावत पले ।
केश-रचना के सहायक हैं शिखी,
चित्र में मानो अयोध्या है लिखी ।

स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहाँ,
किंतु सुरसरिता कहाँ, सरयू कहाँ ?

वह मरों को मात्र पार उतारती,
 यह यहीं से जीवितों को तारती ।
 एक तरु के विविध सुमनों-से खिले,
 पौरजन रहते परस्पर हैं मिले ।
 स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट, उद्योगी, सभी,
 बाह्य भोगी, आंतरिक योगी सभी ।
 व्याधि की बाधा नहीं तन के लिए,
 आधि की शंका नहीं मन के लिए ।
 चोर की चिंता नहीं धन के लिए,
 सर्व सुख हैं प्राप्त जीवन के लिए ।
 एक भी आँगन नहीं ऐसा यहाँ,
 शिशु न करते हों कलित क्रीड़ा जहाँ ।
 कौन है ऐसा अभागा गृह कहो,
 साथ जिसके अश्व-गोशाला न हो ?
 धान्य-धन परिपूर्ण सबके धाम हैं,
 रंगशाला-से सजे अभिराम हैं ।

शुभ कामना

मानस-भवन में आर्य्यजन जिनकी उतारें आरती,
 भगवान ! भारतवर्ष में गूंजे हमारी भारती ।
 हो भद्रभावोद्भाविनी यह भारती हे भगवते !
 सीतापते ! सीतापते !! गीतामते ! गीतामते !!

(२)

सबकी नसों में पूर्वजों का पुण्य रक्त प्रवाह हो ,
गुण, शील, साहस, बल तथा सबमें भरा उत्साह हो ।
सबके हृदय में सर्वदा समवेदना की दाह हो ,
हमको तुम्हारी चाह हो, तुमको हमारी चाह हो ॥

(३)

विद्या, कला, कौशल्य में सबका अटल अनुराग हो ,
उद्योग का उन्माद हो, आलस्य-अघ का त्याग हो ।
सुख और दुख में एक-सा सब भाइयों का भाग हो ,
अंतःकरण में गूंजता राष्ट्रीयता का राग हो ॥

(४)

कठिनाइयों के मध्य अध्यवसाय का उन्मेष हो ,
जीवन सरल हो, तन सबल हो, मन विमल सविशेष हो ।
छूटे कदापि न सत्य-पथ निज देश हो कि विदेश हो ,
अखिलेश का आदेश हो जो बस वही उद्देश्य हो ॥

(५)

आत्मावलंबन ही हमारी मनुजता का मर्म हो ,
षडरिपु समर के हित सतत चारित्र्यरूपी वर्म्म हो ।
भीतर अलौकिक भाव हो बाहर जगत का कर्म हो ,
प्रभुभक्ति, परहित और निश्चल नीति हो, ध्रुव धर्म हो ।

(६)

उपलक्ष्य के पीछे कभी विगलित न जीवन लक्ष्य हो ,
जब तक रहें ये प्राण तन में पुण्य का ही पक्ष हो ।
कर्त्तव्य एक न एक पावन नित्य नेत्र-समक्ष हो ,
सम्पत्ति और विपत्ति में विचलित कदापि न वक्ष हो ॥

(७)

उस वेद के उपदेश का सर्वत्र ही प्रस्ताव हो ,
सौहार्द और मतैक्य हो, अविरोध मन का भाव हो ।
सब इष्ट फल पावें परस्पर प्रेम रखकर सर्वथा ,
निज यज्ञ-भाग समानता से देव लेते हैं यथा ॥

मातृभूमि

नीलांबर परिधान हरित पट पर सुंदर है ,
सूर्य-चंद्र युग मुकुट, मखला रत्नाकर है ।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारा-मंडल है ,
बंदीजन खग-वृंद, शेष-फन सिंहासन है ।

करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की !

हे मातृभूमि, तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की ।

मृतक समान अशक्त, अवश, आँखों को मीचे ,
गिरता हुआ विलोक गर्भ से हमको नीचे ।
करके जिसने कृपा हमें अवलंब दिया था ,
लेकर अपने अतुल अंक में त्राण किया था ।

जो जननी का भी सर्वदा, थी पालन करती रही ।

तू क्यों न हमारी पूज्य हो ? मातृभूमि मातामही !
जिसकी रज में लोट लोटकर बड़े हुए हैं,
घुटनों के बल सरक सरककर खड़े हुए हैं।
परमहंस-सम बाल्य काल में सब सुख पाए,
जिसके कारण 'धूलि भरे हीरे' कहलाए।

हम खेले-कूदे हर्षयुक्त जिसकी प्यारी गोद में,
हे मातृभूमि, तुझको निरख मग्न क्यों न हों मोद में ?

पालन पोषण और जन्म का कारण तू ही,
वक्षस्थल पर हमें कर रही धारण तू ही।
अभ्रंकष प्रासाद और ये महल हमारे,
बने हुए हैं अहो ! तुझीसे तुझपर सारे।

हे मातृभूमि, हम जब कभी तेरी शरण न पायेंगे,
बस, तभी प्रलय के पेट में सभी लीन हो जायेंगे।

हमें जीवनाधार अन्न तू ही देती है,
बदले में कुछ नहीं किसी से तू लेती है।
श्रेष्ठ एक से विविध द्रव्यों के द्वारा,
पोषण करती प्रेम-भाव से सदा हमारा।

हे मातृभूमि, उपजें न जो तुझसे कृषि-अंकुर कभी,
तो तड़प-तड़प कर जल मरें जठरानल में हम सभी।

पाकर तुझसे सभी सुखों को हमने भोगा,
तेरा प्रत्युपकार कभी क्या हमसे होगा ?

तेरी ही यह देह, तुझीसे बनी हुई है,
 बस, तेरे ही सुरस-सार से सनी हुई है।
 फिर अंत समय तू ही इसे अचल देख अपनायगी,
 हे मातृभूमि, यह अंत में तुझमें ही मिल जायगी।

जिन मित्रों का मिलन मलिनता को है खोता,
 जिस प्रेमी का प्रेम हमें मुददायक होता।
 जिन स्वजनों को देख हृदय हर्षित हो जाता,
 नहीं टूटता कभी जन्म भर जिनसे नाता।
 उन सबमें तेरा सर्वदा व्याप्त हो रहा तत्त्व है !
 हे मातृभूमि, तेरे सदृश, किसका महा महत्व है ?

त्तिर्मल तेरा नीर अमृत के सम उत्तम है,
 शीतल-मंद-सुगंध-पवन हर लेता श्रम है।
 षड्भुजों का विविध दृश्ययुत अद्भुत क्रम है,
 हरियाली का फर्श नहीं मखमल से कम है।
 शुचि सुधा सींचता रात में तुझपर चंद्र प्रकाश है,
 हे मातृभूमि, दिन में तरणि करता तम का नाश है।

सुरभित, सुंदर, सुखद सुमन तुझपर खिलते हैं,
 भाँति भाँति के सरस, सुधोपम फल मिलते हैं।
 औषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली,
 खानें शोभित कहीं धातु-वर रत्नों वाली।
 जो आवश्यक होते हमें, मिलते सभी पदार्थ हैं,
 हे मातृभूमि, वसुधा-धरा तेरे नाम यथार्थ हैं।

दीख रही ह कहीं दूर तक शैल - श्रेणी ,
कहीं घनावलि बनी हुई है तेरी वेणी ।
नदियाँ पैर पखार रही हैं बनकर चेरी ,
पुष्पों से तरु - राजि कर रही पूजा तेरी ।

मृदु मलय-वायु मानो तुझे चंदन चारु चढ़ा रही ,
हे मातृभूमि, किसका न तू सात्विक भाव बढ़ा रही ?

क्षमामयी, तू दयामयी है, क्षेममयी है ,
सुधामयी, वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है ;
विभवशालिनी, विश्वपालिनी, दुःखहर्त्री है ,
भयनिवारिणी, शान्तिकारिणी, सुखकर्त्री है ।

हे शरणदायिनी देवि तू, करती सबका त्राण है ,
हे मातृभूमि, संतान हम, तू जननी, तू प्राण है ।

आते ही उपकार याद है माता ! तेरा ,
हो जाता मन मुग्ध भक्ति - भावों का प्रेरण ।
तू पूजा के योग्य, कीर्ति तेरी हम गावें ,
मन होता है तुझे उठाकर शीश चढ़ावें ।

वह शक्ति कहाँ, हा ! क्या करें, क्यों हमको लज्जा न हो ?
हम मातृभूमि, केवल तुझे शीश झुका सकते अहो !

कोई व्यक्ति-विशेष नहीं तेरा अपना है ,
जो यह समझे हाय ! देखता वह सपना है ।
तुझको सारे जीव एक-से ही प्यारे हैं ,
कर्मों के फल मात्र यहाँ न्यारे-न्यारे हैं ।

ह मातृभूमि, तेरे निकट सबका सम संबंध ह,
जो भेद मानता वह अहा लोचन-युत भी अंध है।

जिस पृथिवी में मिले हमारे पूवज प्यारे,
उससे हे भगवान ! कभी हम रहें न न्यारे।
लोट लोटकर वहीं हृदय को शांत करेंगे,
उसमें मिलते समय मृत्यु से नहीं डरेंगे।
उस मातृभूमि की धूलि में जब पूरे सन जायँगे।
होकर भव-बंधन-मुक्त हम आत्मरूप बन जायँगे।

अभ्यास-संकेत

- १। कवि ने मनुष्यता और मातृभूमि के संबंध में जो उद्गार प्रकट किये हैं, उन्हें अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए।
- २। 'शुभ कामना' शीर्षक कविता में कवि ने भारतीयों के लिए किन वरदानों की कामना की है ?
- ३। "मनुष्य मात्र बंधु है"—शीर्षक से एक लघु निबंध लिखिए।
- ४। गुप्तजी की भाषा-शैली की विवेचना कीजिए।
स्वाध्याय : "शुभ कामना" को कंठस्थ कीजिए।

रामनरेश त्रिपाठी

जन्म : १८८६ ई०

स्वदेश-प्रेम

अतुलनीय जिनके प्रताप का ,
साक्षी है प्रत्यक्ष दिवाकर ।
धूम-धूम कर देख चुका है ,
जिसकी निर्मल कीर्ति निशाकर ॥
देख चुके हैं जिनका वैभव ,
ये नभ के अनंत तारागण ।
अगणित बार सुन चुका है नभ ,
जिनका विजय - घोष रण - गर्जन ॥१॥
शोभित है सर्वोच्च मुकुट से ,
जिनके दिव्य देश का मस्तक ।
गूँज रही हैं सकल दिशाएँ ,
जिनके जय-गीतों से अब तक ॥
जिनकी महिमा का अविरल ,
साक्षी सत्य रूप हिम गिरिवर ।
उतरा करते थे विमान-दल ,
जिसके विस्तृत वक्षस्थल पर ॥२॥
सागर निज छाती पर जिनके ,
अगणित अर्णव पोत उठाकर ।

पहुँचाया करता था प्रमुदित,
 भूमण्डल के सकल तटों पर॥
 नदियाँ जिनकी यश-धारा-सी,
 बहती हैं अब भी निशि-वासर।
 ढूँढ़ो उनके चरण-चिह्न भी,
 पाओगे तुम इनके तट पर॥३॥

हे युवको ! तुम उन्हीं पूर्वजों
 के वंशज, उनके हो प्रतिनिधि।
 तुम्हीं मान-रक्षक हो उनके,
 कीर्ति-तरंगिणियों के वारिधि॥
 रवि, शशि, उडुगण, गगन, दिशाएँ,
 हैं गिरि, नदी, मेदिनी जब तक।
 निज पैतृक धन स्वतंत्रता को,
 क्या तुम तज सकते हो तब तक? ॥४॥

विषुवत रेखा का वासी जो,
 जीता है नित हाँफ हाँफ कर।
 रखता है अनुराग अलौकिक,
 वह भी अपनी मातृभूमि पर॥
 ध्रुववासी जो हिम में, तम में,
 जी लेता है काँप-काँप कर।
 वह भी अपनी मातृभूमि पर,
 कर देता है प्राण निछावर ॥५॥

तुम तो हे प्रिय बंधु ! स्वर्ग-सी ,
सुखद सकल विभवों की आकर-
धरा-शिरोमणि मातृ-भूमि में ,
धन्य हुए हो जीवन पाकर ॥

तुम जिसका जल-अन्न ग्रहण कर ,
बड़े हुए लेकर जिसकी रज ।
तन रहते कैसे तज दोगे ?
उसको हे वीरों के वंशज ! ॥६॥

जब तक साथ एक भी दम हो ,
हो । अवशिष्ट एक भी धड़कन ।
रखो आत्म-गौरव से ऊँची
पलकें, ऊँचा सिर, ऊँचा मन ॥ :

एक बूंद भी रक्त शेष हो ,
जब तक तन में हे शत्रुंजय !
दीन वचन मुख से न उचारो ,
मानो नहीं मृत्यु का भी भय ॥७॥

निर्भय स्वागत करो मृत्यु का ,
मृत्यु एक है विश्राम-स्थल ।
जीव यहाँ से फिर चलता है ,
धारण कर नव-जीवन संबल ॥

मृत्यु एक सरिता है ; जिसमें ,
श्रम से कातर जीव नहाकर ।

फिर नूतन धारण करता है,
 काया-रूपी वस्त्र बहाकर ॥ ८॥
 सच्चा प्रेम वही है जिसकी,
 तृप्ति आत्मबलि पर हो निर्भर।
 त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है,
 करो प्रेम पर प्राण निद्धावर ॥
 देश-प्रेम वह पुण्य क्षेत्र है,
 अमल असीम त्याग से विलसित।
 आत्मा के विकास से जिसमें,
 मनुष्यता होती है विकसित ॥ ९॥

सत्कर्तव्य

जग में सचर-अचर जितने हैं, सारे कर्म-निरत हैं।
 धुन है एक न एक सभी को, सबके निश्चित व्रत हैं ॥
 जीवन-भर आतप सह वसुधा पर छाया करता है।
 तुच्छ पत्र की भी स्वकर्म में कैसी तत्परता है ॥ १॥

सिधु-विहंग तरंग-पंख को फड़काकर प्रतिक्षण में।
 है निमग्न नित भूमि-अंड के सेवन में, रक्षण में ॥
 कोमल मलय पवन घर-घर में सुरभि बाँट आता है।
 शस्य सींचने घन जीवन धारण कर नित जाता है ॥ २॥

रवि जग में शोभा सरसाता, सोम सुधा बरसाता।
 सब है लगे कर्म में कोई निष्क्रिय दृष्टि न आता ॥

है उद्देश्य नितांत तुच्छ तृण के भी लघु जीवन का ।
 उसी पूर्ति में वह करता है अंत कर्ममय तन का ॥३॥
 तुम मनुष्य हो, अमित बुद्धि-बल-विलसित जन्म तुम्हारा ,
 क्या उद्देश्य - रहित है जग में, तुमने कभी विचारा ?
 बुरा न मानो, एक बार सोचो तुम अपने मन में ।
 क्या कर्तव्य समाप्त कर लिए तुमने निज जीवन में ? ॥४॥

जिसपर गिरकर उदर-दरो से तुमने जन्म लिया है ,
 जिसका खाकर अन्न सुधा सम नीर-समीर पिया है ;
 वह सनेह की मूर्ति दयामयि माता तुल्य मही है ।
 उसके प्रति कर्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है ? ॥५॥

तुम्हें उचित था, तुम उदार बनकर घर-घर में जाते,
 अमित प्रेम-निधि एक-एक प्राणी को मुक्त लुटाते ।
 किंतु कृपण बन सब समेट, सानंद स्वयं रहते हो ;
 इस पर भी तुम स्वार्थ-ग्रसित कुत्सित जग को कहते हो ॥६॥

केवल अपने लिए सोचते मौज भरे गाते हो !
 पीते, खाते, सोते, जगते, हँसते, सुख पाते हो ॥
 जग से दूर स्वार्थ साधन ही सतत तुम्हारा यश है ।
 सोचो तुम्ही ; कौन जन जग में तुमसा स्वार्थ-विवश है ॥७॥

आवश्यकता की पुकार को श्रुति ने श्रवण किया है ।
 कहो, करो ने आगे बढ़ किसको साहाय्य दिया है ?
 आर्त्तनाद तक कभी पदों ने क्या तुमको पहुँचाया ?
 क्या नैराश्य-निमग्न जनों को तुमने कंठ लगाया ? ॥८॥

यह संसार मनुष्य के लिए एक परीक्षा-स्थल है ।
 दुख हैं प्रश्न कठोर, देखकर होती बुद्धि विकल है ॥
 किंतु स्वात्म-बल-विज्ञ सत्पुरुष ठीक पहुँच अटकल से,
 हल करते हैं प्रश्न सहज में अविरल मेधा-बल से ॥९॥

परम विचित्र यंत्र यह जग है उसी शक्ति से चलता ।
 मत करना अभिमान मिले जो तुमको कभी सफलता ॥
 यद्यपि सब जग का हित-चिंतन सबको आवश्यक है ।
 पर प्रत्येक मनुज पर पहला देश-जाति का हक है ॥१०॥

पैदा कर जिस देश-जाति ने तुमको पाला-पोसा ।
 किए हुए है वह निज-हित का तुमसे बड़ा भरोसा ॥
 उससे होना उद्धरण प्रथम है सत्कर्तव्य तुम्हारा ।
 फिर दे सकते हो वसुधा को शेष स्वजीवन सारा ॥११॥

अभ्यास-संकेत

- १। प्रथम कविता के छठे, सातवें और नवें छंदों में जो उद्धोधन के भाव हैं उन्हें अपने शब्दों में प्रभावशाली ढंग से व्यक्त कीजिए ।
- २। 'यह संसार मनुष्य के लिए एक परीक्षा-स्थल है' । — इस कथन से आप क्या समझते हैं, समझाइए ।
- ३। 'सत्कर्तव्य' कविता के आधार पर इस विषय पर एक निबंध लिखिए ।

स्वाध्याय : त्रिपाठीजी की कविताओं के जो अंश आपको सर्वाधिक प्रिय लगें, उन्हें दोहराइए और उनके मर्म पर विचार कीजिए ।

विद्रोही

नगर गड़ गए, महल गड़ गए; गड़े किले, मीनारें।
मंदिर, मस्जिद, गिरजे—सबकी भू में धँसीं दिवारें॥
शव धँस गए—नहीं जी शिव की और विष्णु की मूरत।
सब गड़ गए भूमि में, दिखती नहीं किसी की सूरत॥

जहाँ भूमि पर पड़ा कि सोना धँसता, चाँदी धँसती।
धँसती ही जाती पृथ्वी में बड़ों-बड़ों की हस्ती॥
हीरा-मोती धँसते, धँसते ज़री और कमखाव।
धँसते देखे राजमुकुट, गढ़, महलों के महाराब॥

शक्तिहीन जो हुआ कि बैठा भू पर आसन मारे।
खा जाते हैं उसको मिट्टी के ढेले हत्यारे॥
मातृभूमि है उसकी, जिसको उठ जीना आता है।
दहन-भूमि है उसकी, जो क्षण-क्षण गिरता जाता है॥

त्रिपुरी की नगरी जमीन में गड़ी नर्मदा-तट पर।
महलों के महाराब लगे हैं तालों के पनघट पर॥
मांडवगढ़ गड़ता जाता है, नित्य धूल खाता है।
जन-समूह उसका शव-दर्शन-पुण्य लूट आता है॥

बना इतिहास बिचारा निठुर प्रकृति का आज हास ।
ले बैठी स्वातंत्र्य-भावना मिट्टी में संन्यास ॥
किंतु एक में भी हूँ किसी वृक्ष का छोटा दाना ।
मुझको है महलों जैसा ही मिट्टी में मिल जाना ॥

या कि कटा धड़ हूँ डाली का, मिट्टी में मिटता हूँ ।
वर्षा की बूंदों से रह-रह में संतत पिटता हूँ ॥
मुझपर भी जाड़ा आता है थर्-थर् प्राण सुखाता ।
प्रबल प्रखरता अपनी बोता, मैं गरीब थर्राता ॥

भूमि खींचती है मुझको भी नीचे धीरे-धीरे ।
किंतु लहरता हूँ मैं नभ पर शीतल-मंद-समीरे ॥
मैंने मिट जाने में सीखा है जग में हरियाना ।
मेरी हरियाली दुनिया है मिट्टी में मिल जाना ॥

काला बादल आता है, गुण-गजन-स्वर भरता है ।
विद्रोही-मस्तक पर वह अभिषेक किया करता है ॥
विद्रोही हम हैं कि चढ़ाती प्रकृति हमों पर रूप ।
कलियों के किरीट पहिनाती, हमें बनाती भूप ॥

विद्रोही हैं हमीं, हमारे फूलों में फल आते ।
और हमारी-कुरबानी पर जड़ भी जीवन पाते ॥
कलम हमारी हो या कोई रहे हमारा दाना ।
उसका है आराध्य जगत में बस विद्रोह मचाना ॥

विद्रोही हम हैं कि हमारे पत्र-पीड़ जल छल कर ।
औषध बना प्राण पाते हैं पीड़ित हमें कुचलकर ॥

विद्रोही हम हैं, पथिकों के छाया-घर हैं हम ही ।
भूखे, तपन-तपे जीवों के आश्रयवर हैं हम ही ॥

हम निर्जन हैं, हम नंदन हैं, हम ही दुर्गम वन हैं ।
विद्रोही हैं, शस्य-श्यामला के हम जीवन-धन हैं ॥
हम हैं नहीं रूढ़ि की पुस्तक के पथरीले भार ।
नित नवीनता के हम हैं जग को मौलिक उपहार ॥

उथल-पुथल सी करे जहाँ तक वायु, बनी दीवानी ।
और जहाँ तक वार कर सके नभ का सीधा पानी ॥
जहाँ तलक सूरज की किरणें जला सकें मनमानी ।
जहाँ भूमि हो ऋतु की निर्दयता की अकथ कहानी ॥

वहाँ लखो अपना लहराना, हरियाना, मुसकाना ।
विद्रोही सीखे विनाश पर नित सौभाग्य बसाना ॥
छोटे बागों को तुम देखो, हम हँस-हँस खिलते हैं ।
पथरीले टीले पर देखो, हम हाज़िर मिलते हैं ॥

दरों और घाटियों में अपना शृंगार घना है ।
गिरि की एड़ी से चोटी तक बस सब-कुछ अपना है ॥
जहाँ मनुष्य न पशु जा पाएँ, खतरे में हम-आप ।
विद्रोही हरियाते हैं, लहराते हैं चुपचाप ॥

गिरि-शृंगों में लिखी प्रकृति की जयमाला बन आए ।
आतप-जले मेह के मारे, जाड़े के थर्राए ॥
सद्यः - स्नाता भू-रानी के गोद भरे एहसान ।
अत्याचारों में लहरानेवाला जग - वरदान ॥

आतप रक्त-पिए हम वर्षा से वसूल कर लेते ।
 विद्रोही हैं—विश्व-द्वार पर प्रति पल धरना देते ॥
 लोहे के फरसे आते हैं हमको खोद बहाने ।
 पगले, अपने महा-जोर की महिमा वे क्या जाने ?
 ज्वाला जगी कि अपनी बलि हम पहले देंगे प्यारे ।
 हमसे ही बनते देखे हैं दुनिया ने अंगारे ॥
 मिट्टी में मिलना, हरियाना, फिर होता अंगारे ।
 विद्रोही हैं—ऐसे होते हैं अवतार हमारे ॥
 जिसके आकर्षण से काले बादल भू पर आते ।
 अपनी सब स्वर्गीय सुधा चुपचाप विवश ढुलकाते ॥
 जिसके स्नेह-जोर से प्रलयकारिणी आँखें मीचे ।
 बिजली तक चीत्कार किए आ पड़ती भू पर नीचे ॥
 ग्रह भुक्ते, तारागण भुक्ते सब भुक्ते जिस ओर ।
 विद्रोही हम अजमाते उस भू पर अपना जोर ॥
 जहाँ स्नेह से पले प्यार में हमको खिलना आता ।
 अपनी कलियों विश्व-हृदय पर हमको मिलना आता ॥
 किंतु जहाँ सिर कटे कि हम सौ-गुने हुए तत्काल ।
 दिए किसीने फूल, किसीन काँटे दिए निकाल ॥
 घातक कभी अकेला आये, पड़े प्राण-धन देना ।
 विद्रोही हैं—गोद खिलाते हिंस्र-जंतु की सेना ॥
 काली माटी, पीली माटी, माटी होवे लाल ।
 अपने आकर्षण में हमको कितना रखे सँभाल ॥

उसपर पद रख घन-वर्षण में पा प्रभु का संदेश ।
कर ऊँचा शिर हम उठ देते नभ-दिशि को तत्काल ॥

मिट्टी के तह फटते जाते, हम हैं उठते जाते ।
विद्रोही हैं—जो उठते हैं, वे ही हैं हरियाते ॥
आई जहाँ रुकावट हमको वहाँ भगड़ते देखो ।
दाएँ, बाएँ, सीधे हमको आगे बढ़ते देखो ॥

हर विपदा पर, हर प्रहार पर हमें उमड़ते देखो ।
और सनसनी तूफानों में हमें अकड़ते देखो ॥
फल फेंकेंगे, कभी फूल भी फेंकेंगे हम भू पर ।
विद्रोही,—पर मस्तक अपना किए रहेंगे ऊपर ॥

अभ्यास-संकेत

- १। उक्त कविता के आधार पर यह सिद्ध कीजिए कि विद्रोही का अंतिम लक्ष्य 'सौभाग्य की सृष्टि' होता है ।
- २। "विद्रोही वृक्ष" शीर्षक एक निबंध लिखिए ।
- ३। "ओजस्वी भाषा का शक्तिशाली प्रवाह 'विद्रोही' में परिलक्षित है ।"—इस कथन का समर्थन सोदाहरण कीजिए ।

स्वाध्याय : अपने पुस्तकालयाध्यक्ष की सहायता से काजी नज़रुल इस्लाम की 'विद्रोही' शीर्षक कविता प्राप्त कीजिए और उसे पढ़िए ।

आह्वान-गीत

हिमाद्रि तुंग शृंग स
प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वयं - प्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती:—

“अमर्त्य वीर-पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है—बढ़े चलो बढ़े चलो !
असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ,
विकीर्ण दिव्य दाह-सी।
सपूत मातृभूमि के—
रुको न शूर साहसी !
अराति-सैन्य-सिंधु में—सुबाड़वाग्नि-से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो—बढ़े चलो बढ़े चलो।

भारतवर्ष

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार
उषा ने हँस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक हार।
जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक,
व्योम-तम-पुंज हुआ सबानष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक।

विमल वाणो ने बीणा ली कमल-कोमल कर में सप्रीत ,
 सप्त स्वर सप्तसिंधु में उठे, छिड़ा तब मधुर साम संगीत ।
 बचा कर बीज-रूप से सृष्टि, नाव पर भेल प्रलय का शीत ,
 अरुण-केतन लेकर निज हाथ वरुण पथ में हम बढ़े अभीत ।
 सुना है दधीचि का वह त्याग, हमारा जातीयता विकास ,
 पुरंदर ने पवि से है लिखा अस्थि-युग का मेरे इतिहाम ।
 सिंधु-सा विस्तृत और अथाह, एक निर्वासित का उत्साह ,
 दे रही अभी दिखाई भग्न, मग्न रत्नाकर में वह राह ।
 धर्म का ले लेकर जो नाम हुआ करती बलि, कर दी बंद ,
 हमी ने दिया शांति-संदेश, सुखी होते देकर आनन्द ।
 विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम ,
 भिक्षु होकर रहते सम्राट् दया दिखलाते घर-घर धूम ।
 यवन को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म की दृष्टि ,
 मिला था स्वर्ण-भूमि को रत्न, शील की सिंहल को भी सृष्टि ।
 किसी का हमने छोना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं ,
 हमारी जन्मभूमि थी यही, कहीं से हम आए थे नहीं ।
 जातियों का उत्थान-पतन, आँधियाँ, झड़ी, प्रचंड समीर ,
 खड़े देखा, भेला हँसते, प्रलय में पले हुए हम वीर ।
 चरित के पूत, भुजा में शक्ति, नम्रता रही सदा संपन्न ,
 हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख न सके विपन्न ।
 हमारे संचय में था दान, अतिथि थे सदा हमारे देव ,
 वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा में रहती थी टेव ।

वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान,
 वही है शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य्य-संतान ।
 जिएँ तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष,
 निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष ।

अभ्यास-संकेत

१। “‘भारतवर्ष’ कविता में हमारी संस्कृति के प्रधान तत्त्वों की ओर उद्बोधक संकेत किये गये हैं।”—इस कथन के प्रकाश में उक्त कविता फिर पढ़िए और उसमें जिन सांस्कृतिक तत्त्वों की ओर संकेत है उनकी सूची बनाइए ।

२। “‘प्रसाद’ जी की भाषा में अपूर्व प्रांजलता है।” उदाहरण देकर इस कथन को सिद्ध कीजिए ।

स्वाध्याय : आह्वान-गीत कंठस्थ कीजिए और अकेले तथा समवेत रूप से उसे सस्वर पढ़िए ।

पंत सुमित्रानन्दन पंत

जन्म : १६०० ई०

बाल-प्रश्न

“माँ ! अल्मोड़े में आए थे
जब राजर्षि विवेकानन्द ,
तब मग में मखमल बिछवाया ,
दीपावलि की विपुल अमंद ।
बिना पाँवड़े पथ में क्या वे
जननि ! नहीं चल सकते हैं ?
दीपावलि क्यों की ? क्या वे माँ !
मंद दृष्टि कुछ रखते हैं ?”

“कृष्णे ! स्वामीजी तो दुर्गम
मग में चलते हैं निर्भय ,
दिव्य दृष्टि हैं, कितने ही पथ
पार कर चुके कंटकमय ।
वह मखमल तो भक्तिभाव थे
फैले जनता के मन के ,
स्वामीजी तो प्रभावान हैं
वे प्रदीप थे पूजन के !”

ग्राम-चित्र

यहाँ नहीं है चहल पहल वैभव विस्मित जीवन की,
 यहाँ डोलता वायु म्लान सौरभ मर्मर ले वन की।
 आता मौन प्रभात अकेला, संध्या भरी उदासी,
 यहाँ घूमती दोपहरी में स्वप्नों की छाया-सी।
 यहाँ नहीं विद्युत् दीपों का दिवस, विशा में निर्मित;
 अधियाली में रहती गहरी अधियाली भय कल्पित।
 यहाँ खर्व नर (वानर?) रहते युग-युग से अभिशापित,
 अन्न-वस्त्र-पीड़ित, असभ्य, निर्बुद्धि, पंक में पालित।
 यह तो मानव लोक नहीं है, यह है नरक अपरिचित,
 यह भारत का ग्राम, सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित!
 भाड़-फूस के विवर,—यही क्या जीवन-शिल्पी के घर?
 कीड़ों-से रेंगते कौन ये? बुद्धि-प्राण नारी-नर!
 अकथनीय क्षुद्रता-विवशता भरी यहाँ के जग में,
 गृह-गृह में है कलह, खेत में कलह, कलह है मग में।
 यह रवि-शशि का लोक, जहाँ हँसते समूह में उडुगण,
 जहाँ चहकते विहग, बदलते क्षण-क्षण विद्युत्-प्रभ-घन।
 यहाँ वनस्पति रहती, रहती खेतों की हरियाली,
 यहाँ फूल है, यहाँ ओस, कोकिला, आम की डाली।
 ये रहते हैं यहाँ,—और नीला नभ, बोई धरती,
 सूरज का चौड़ा प्रकाश, ज्योत्स्ना चुपचाप विचरती।
 प्रकृति धाम यह, तृण-तृण, कण-कण जहाँ प्रफुल्लित, जीवित,
 यहाँ अकेला मानव ही रे चिर विषण्ण जीवन्मृत!

मौन-निमन्त्रण

स्तब्ध-ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान ,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न-अजान ;
न जाने, नक्षत्रों स कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन !

सघन-मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार ,
दीर्घ भरता समीर निःश्वास ,
प्रखर भरती जब पावस - धार ;
न जाने, तपक तड़ित में कौन
मुझे इंगित करता तब मौन !

देख वसुधा का यौवन-भार
गूँज उठता है जब मधुमास ,
विधुर उर के-से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास ;
न जाने सौरभ के मिस कौन
सँदेशा मुझे भेजता मौन !

न जाने कौन, अय छविमान !
जान मुझको अबोध, अज्ञान,

सुभाते हो तुम पथ अनजान ,
 फूँक देते छिद्रों में गान ;
 अहे सुख-दुख के सहचर मौन !
 नहीं कह सकती तुम हो कौन !

बापू के प्रति

तुम मांस - हीन, तुम रक्त - हीन ,
 हे अस्थि-शेष ! तुम अस्थि-हीन ,
 तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल ,
 हे पुराण, हे चिर - नवीन !
 तुम पूर्ण इकाई जीवन की ,
 जिसमें असार भव-शून्य लीन ,
 आधार अमर, होगी जिसपर ,
 भावी की संस्कृति समासीन ॥१॥

तुम मांस, तुम्हीं हो रक्त-अस्थि-
 निर्मित जिनसे नव-युग का तन ,
 तुम धन्य ! तुम्हारा निःस्व त्याग ,
 है विश्व भोग का वर साधन ।
 इस भस्म - काम तन की रज से ,
 जग पूर्ण - काम नव-जग-जीवन
 बीनेगा सत्य अहिंसा के
 ताने-बानों में मानवपन ॥२॥

सदियों का दैन्य तमिस्र तून ,
 धुन तुमने, कात प्रकाश सूत ,
 हे नग्न ! नग्न पशुता ढँक दी-
 बुन नव संस्कृति मनुजत्व पूत ।
 जग पीड़ित छूतों से प्रभूत ,
 छू अमृत स्पर्श से, हे अछूत !
 तुमने पावन कर मुक्त किए
 मृत संस्कृतियों के विकृत भूत ॥३॥

सुख भोग खोजने आते सब ,
 आये तुम करने सत्य खोज ;
 जग की मिट्टी के पुतले जन ,
 तुम आत्मा के, मन के मनोज ।
 जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर
 चेतना, अहिंसा नम्र ओज ,
 पशुता का पंकज बना दिया
 तुमने मानवता का सरोज ॥४॥

सहयोग सिखा शासित जन को ,
 शासन का दुर्वह हटा भार ;
 होकर निरस्त्र सत्याग्रह से
 रोका मिथ्या का वन प्रहार ।
 बहु भेद विग्रहों में खोई
 ली जीर्ण जाति क्षय से उबार ,

तुमने प्रकाश को कह प्रकाश,
औ' अंधकार को अंधकार ॥५॥

उर के चरखे में कात सूक्ष्म
युग-युग का विषय-जनित विषाद;
गुंजित कर दिया गगन जग का
भर तुमने आत्मा का निषाद।
रँग रँग खद्दर के सूत्रों में
नवजीवन आशा, स्पृहा, 'ह्लाद',
मानवी कला के सूत्रधार
हर दिया यंत्र - कौशल प्रवाद ॥६॥

अभ्यास-संकेत

- १। पंतजी ने भारतीय ग्राम का जो चित्र खींचा है वह हृदय में कौन-सी भावनाएँ और प्रेरणाएँ उपजाता है ?
- २। बापू की प्रशस्ति में कवि ने जो भाव व्यक्त किए हैं, उन्हें अपनी भाषा में लिखिए।
- ३। पंतजी की भाषा-शैली की रुचिरता पर प्रकाश डालिए।
स्वाध्याय : पंतजी के ग्राम्या और पल्लव नामक कविता संग्रह अपने पुस्तकालय से लीजिए और उनकी कविताएँ पढ़िए।

वंदना

वर दे, वीणावादिनि वर दे !
प्रिय स्वतंत्र-रव, अमृत मंत्र नव,
भारत में भर दे !

काट अंध-उर के बंधन स्तर
बहा जननि ज्योतिर्मय निर्भर,
कलुष-भेद-तम हर, प्रकाश भर,
जगमग जग कर दे !

नव गति, नव लय, ताल-छंद नव ,
नवल कंठ, नव जलद-मंद्र रव ;
नव नभ के नव विहग वृंद को
नव पर, नव स्वर दे !
वर दे, वीणावादिनि वर दे !

प्रियतम

एक दिन विष्णुजी के पास गए नारदजी ,
पूछा, “मर्त्यलोक में वह कौन है पुण्यश्लोक
भक्त तुम्हारा प्रधान ?”

विष्णुजी ने कहा, “एक सज्जन किसान है,
प्राणों से प्रियतम।”

नारद ने कहा, “मैं
उसकी परीक्षा लूंगा।” हँस विष्णु सुनकर यह,
कहा कि, “ले सकते हो।”

नारदजी चल दिए,
पहुँचे भक्त के यहाँ
देखा—हल जोत कर आया वह दुपहर को ;
दरवाजे पहुँच कर रामजी का नाम लिया ;
स्नान भोजन करके,
फिर चला गया काम पर।

शाम को आया दरवाजे, फिर नाम लिया;
प्रातःकाल चलते समय
एक बार फिर उसने
मधुर नाम स्मरण किया।
“बस केवल तीन बार” :
नारद चकरा गये।—
दिवाारात्र जपते हैं नाम ऋषि-मुनि लोग
किंतु भगवान को किसान ही यह याद आया ?
गए वह विष्णुलोक,
बोले भगवान से,

देखा किसान को—
दिन भर में तीन बार
नाम उसने लिया है।

बोले विष्णु, “नारदजी,
आवश्यक दूसरा
काम एक आया है,
तुम्हें छोड़कर कोई
और नहीं कर सकता।
साधारण विषय यह।

बाद को विवाद होगा ;
तब तक यह आवश्यक कार्य पूरा कीजिए:
‘तैल-पूर्ण पात्र यह
लेकर, प्रदक्षिण कर आइए भूमण्डल को ;
ध्यान रहे सविशेष,
एक बूंद भी इससे
तेल न गिरने पाए।’
लेकर चले नारदजी,
आज्ञा पर धृतलक्ष—
एक बूंद तेल उस पात्र से गिरे नहीं !

योगिराज जल्द ही
विश्व-पर्यटन कर के
लौटे वैकुण्ठ को !

तेल एक बूंद भी उस पात्र से गिरा नहीं ।
 उल्लास मन में भरा था
 यह सोचकर, तैल का रहस्य एक
 अवगत होगा नया ।

नारद को देखकर
 विष्णु भगवान ने
 बैठाया स्नेह से,
 कहा, “यह उत्तर तुम्हारा यहाँ आ गया ।
 बतलाओ पात्र लेकर जाते समय कितने बार
 नाम इष्ट का लिया ?”
 “एक बार भी नहीं,”—
 शंकित हृदय से कहा नारद ने विष्णु से,—
 “काम तुम्हारा ही था,
 ध्यान उसी से लगा,
 नाम फिर क्या लेता और ?”

विष्णु ने कहा, “नारद,
 उस किसान का भी काम
 मेरा दिया हुआ है,
 उतरदायित्व कई लादे हैं एक साथ ;
 सबको निभाता और
 काम करता हुआ

नाम भी वह लेता है ,
 इसी से है प्रियतम ! ”
 नारद लज्जित हुए ,
 कहा, “यह सत्य है ।”

अभ्यास-संकेत

- १। वंदना में वीणावादिनी से कवि ने कौन से वर माँगे हैं ? अपने शब्दों में स्पष्ट कीजिए ।
- २। विष्णु, नारद और किसान की कथा के व्याज से कवि ने किस बात की महत्ता की ओर संकेत किया है ? भगवान के प्रियतम जन का क्या लक्षण है ?
- ३। उक्त लंबी कविता में छंद की दृष्टि से आपको क्या विशेषता दिखाई पड़ती है ?
स्वाध्याय : वंदना को कंठस्थ कीजिए । किसी अन्य संग्रह से कवि की ‘तुलसीदास’ और ‘राम की शक्ति-पूजा’ शीर्षक कविताएँ पढ़िए ।

महादेवी वर्मा

जन्म १९०५ ई०

गीत

मैं बनी मधुमास आली !

आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी ,
बरस मुधि के इंदु से छिटकी पुलक की चाँदनी ;

उमड़ आई री दृगों में ,

सजनि कार्लिंदी निराली !

रजत स्वप्नों में उदित अपलक विरल तारावली ,
जाग शुक-पिक ने अचानक मंदिर पंचम तान ली ,

बह चली निःश्वास की मृदु

वात मलय निकुंज पाली !

सजल रोमों में बिछे हैं पाँवड़े मधुस्नात से ,
आज जीवन के निमिष भी दूत हैं अज्ञात से ,

क्या न अब प्रिय की बजेगी ,

मुरलिका मधु राग वाली !

मैं बनी मधुमास आली !

जो तुम आ जाते एक बार !

जो तुम आ जाते एक बार !

कितनी करुणा कितने सँदेश

पथ में बिछ जाते बन पराग ,
 गाता प्राणों का तार-तार
 अनुराग - भरा उन्माद राग ;
 आँसू लेते वे पद पखार
 हँस उठते पल में आर्द्र नयन,
 धुल जाता ओठों से विषाद;
 छा जाता जीवन में वसंत,
 लुट जाता चिर-संचित विराग ;
 आँखें देतीं सर्वस्व वार !
 जो तुम आ जाते एक बार !

तुम दुःख बन इस पथ से आना !

शूलों में नित मृदु पाटल-सा ,
 खिलने देना मेरा जीवन ;
 क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिधवाना !
 वह सौरभ हूँ मैं जो उड़कर ,
 कलिका में लौट नहीं पाता ;
 पर कलिका के नाते ही प्रिय जिसको जग ने सौरभ जाना !
 नित जलता रहने दो तिल-तिल ,
 अपनी ज्वाला में उर मेरा ;
 इसकी विभूति में फिर आकर अपने पद-चिह्न बना जाना !
 वर देते हो तो कर दो ना ,
 चिर आँखमिचौनी यह अपनी

जीवन में खोज तुम्हारी है, मिटना ही तुमको छू पाना !
 प्रिय तेरे उर में जग जावे,
 प्रतिध्वनि जब मेरे पी-पी की,
 उसको जग समझे बादल में विद्युत् का बन बन मिट जाना !
 तुम चुपके से आ बस जाओ,
 सुख-दुख सपनों में श्वासों में ;
 पर मन कह देगा 'यह वे हैं', आँखें कह देंगी पहचाना !

अभ्यास-संकेत

- १। “महादेवीजी की कविताओं की एक-एक पंक्ति में करुणा की मार्मिक तरलता है।” इस कथन पर सोदाहरण अपने विचार प्रकट कीजिए।
- २। उक्त कविताओं में “तुम” कहकर जिसे संबोधित किया गया है वह कौन है ?
- ३। “क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिंधवाना !”—
 इस पंक्ति के गूढ़ार्थ को स्पष्ट कीजिए।
स्वाध्याय : (क) महादेवीजी के ‘यामा’ नामक कविता-संग्रह को पढ़िए। (ख) संस्कृत में करुण रस के श्रेष्ठतम कवि भवभूति हुए हैं। उनकी उत्तर रामचरित नामक कृति का हिन्दी अनुवाद पढ़िए।

स्व० सुभद्राकुमारी चौहान..... १६०४—१६४८ ई०२

वीरों का कैसा हो वसंत ?

वीरों का कैसा हो वसंत ?
आ रही हिमांचल से पुकार,
है उदधि गरजता बार-बार,
प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग्-दिगंत—
वीरों का कैसा हो वसंत ?

फूली सरसों ने दिया रंग,
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वधु-वसुधा पुलकत अंग अंग,
हैं वीर वेश में किंतु कंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

गल-बाहें हों, या हो कृपाण,
चल चितवन हो, या धनुष-बाण,
हो रस-विलास या दलित-त्राण।

अब यही समस्या है दुरंत—
वीरों का कैसा हो वसंत ?

भर रही कोकिला इधर तान ,
 मारू बाजे पर उधर गान ,
 है रंग और रण का विधान ।

मिलने आए हैं आदि-अंत ।
 वीरों का कैसा हो वसंत ?

कह दे अतीत अब मौन त्याग :
 लंके ! तुझमें क्यों लगी आग ?
 ऐ कुरुक्षेत्र ! अब जाग, जाग ।

बतला, अपने अनुभव अनंत ।
 वीरों का कैसा हो वसंत ?

हल्दीघाटी के शिलाखंड ,
 हे दुर्ग ! सिंहगढ़ के प्रचण्ड ,
 राणा, ताना का कर घमण्ड ,
 दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत ।
 वीरों का कैसा हो वसंत ?

भूषण अथवा कवि चंद नहीं ,
 बिजली भर दे वह छंद नहीं ,
 है कलम बँधी स्वच्छंद नहीं ।
 फिर हमें बतावे कौन हंत ?
 वीरों का कैसा हो वसंत ?

भाँसी की रानी की समाधि पर

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी ।
 बूढ़े भारत में भी आई फिरसे नयी जवानी थी ॥
 गुमी हुई आज़ादी की कीमत सबने पहचानी थी ।
 दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी ॥
 चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी ।
 बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
 खूब लड़ी मरदानी, वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

कानपूर के नाना की मुंहबोली बहिन छबीली थी ।
 लक्ष्मीबाई नाम, पिता की वह संतान अकेली थी ॥
 नाना के संग पढ़ती थी वह, नाना के संग खेली थी ।
 बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी, उसकी यही सहेली थी ॥
 वीर शिवाजी की गाथाएँ उसको याद जबानी थीं ।
 बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
 खूब लड़ी मरदानी, वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार ।
 देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार ॥
 नकली युद्ध, व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार ।
 सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना, ये थे उसके प्रिय खिलवाड़ ॥
 महाराष्ट्र-कुल-देवी उसकी भी आराध्य भवानी थी ।
 बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
 खूब लड़ी मरदानी, वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई भाँसी में ।
 व्याह हुआ, रानी बन आई लक्ष्मीबाई भाँसी में ॥
 राजमहल में बजी बधाई, खुशियाँ छाई भाँसी में ।
 सुभट बुंदेलों की विरुदावलि-सी वह आई भाँसी में ॥

चित्रा ने अर्जुन को पाया, शिव से मिली भवानी थी ।
 बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
 खूब लड़ी मरदानी, वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

उदित हुआ सौभाग्य, मुदित महलों में उजियाली छाई ।
 किंतु काल-गति चुपके-चुपके काली घटा घेर लायी ॥
 तीर चलानेवाले कर में उसे चूड़ियाँ कब भाई ?
 रानी विधवा हुई, हाय ! विधि को भी दया नहीं आई !

निःसंतान मरे राजाजी, रानी शोक-समानी थी ।
 बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
 खूब लड़ी मरदानी, वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

बुझा दीप भाँसी का, तब डलहौजी मन में हरषाया ।
 राज्य हड़प करने का उसने यह अच्छा अवसर पाया ॥
 फौरन फौजें भेज, दुर्ग पर अपना झंडा फहराया ।
 लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिश राज्य भाँसी आया ॥

अश्रुपूर्ण रानी ने देखा, भाँसी हुई बिरानी थी ।
 बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
 खूब लड़ी मरदानी, वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

अनुनय-विनय नहीं सुनता है, विकट शासकों की माया ।
व्यापारी बन दया चाहता था, जब यह भारत आया ॥
डलहौजी ने पैर पसारे, अब तो पलट गई काया ।
राजाओं को, नव्वाबों को उसने पैरों ठुकराया ॥

रानी दासी बनी, और यह दासी अब महरानी थी ।
बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मरदानी, वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

छिनी राजधानी देहली की, लिया लखनऊ बातों-बात ।
क़ैद पेशवा था बिठूर में, हुआ नागपुर का भी घात ॥
उदयपुर, तंजौर, सतारा, करनाटक की कौन बिसात ?
जबकि सिंध, पंजाब, ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्र-निपात ॥

बंगाले, मद्रास आदि की भी तो वही कहानी थी ।
बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मरदानी, वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

रानी रोई रनिवासों में, बेगम ग़म से थीं बेज़ार ।
उनके गहने-कपड़े बिकते थे कलकत्ते के बाज़ार ॥
सरे-आम नीलाम छापते थे अंग्रेजों के अखबार—
“नागपुर के जेवर ले लो”, “लखनऊ के लो नौलख-हार” ॥

यों पर्दे की इज्जत परदेशी के हाथ बिकानी थी ।
बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मरदानी, वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

कुटियों में थी विषम वेदना, महलों में आहत अपमान ।
 वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरखों का अभिमान ॥
 नाना धूंधूपंत पेशवा जुटा रहा था सब सामान ।
 बहिन छबोली ने रणचंडी का कर दिया प्रकट आह्वान ॥

हुआ यज्ञ प्रारंभ, उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी ।
 बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
 खूब लड़ी मरदानी, वह तो भांसी वाली रानी थी ॥

महलों ने दी आग, भोपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी ।
 यह स्वतंत्रता की चिनगारी अंतरतम से आई थी ॥
 भांसी चेतो, दिल्ली चेतो, लखनऊ लपटें छाई थीं ।
 मेरठ, कानपुर, पटना ने भारी धूम मचाई थी ॥

जबलपुर, कोल्हापुर में भी कुछ हलचल उकसानी थी ।
 बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
 खूब लड़ी मरदानी, वह तो भांसी वाली रानी थी ॥

इस स्वतंत्रता-महायज्ञ में कई वीरवर आए काम ।
 नाना धूंधूपंत, ताँतिया, चतुर अजीमुल्ला सरनाम ॥
 भ्रमदशाह मौलवी, ठाकुर कुँवरसिंह सैनिक अभिराम ।
 भारत के इतिहास-गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम ॥

लेकिन आज जुमं कहलाती, उनकी जो कुरबानी थी ।
 बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
 खूब लड़ी मरदानी, वह तो भांसी वाली रानी थी ॥

इनकी गाथा छोड़, चलें हम भाँसी के मैदानों में ।
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मरदानों में ॥
लेफ्टिनेंट वाँकर आ पहुँचा, आगे बढ़ा जवानों में ।
रानी ने तलवार खींच ली, हुआ द्रुत अ-समानों में ॥

जख्मी होकर वाँकर भागा, उसे अजब हैरानी थी ।
बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मरदानी, वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

रानी बढ़ी, कालपी आई, कर सौ मील निरंतर पार ।
घोड़ा थककर गिरा भूमि पर, गया स्वर्ग-तत्काल सिधार ॥
यमुना-तट पर अंग्रेजों ने फिर खाई रानी से हार ।
विजयी रानी आगे चल दी, किया ग्वाळियर पर अधिकार ॥

अंग्रेजों के मित्र सिंधिया ने छोड़ी रजधानी थी ।
बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मरदानी, वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

विजय मिली, पर अंग्रेजों की फिर सेना घिर आई थी ।
अब के जनरल स्मिथ सम्मुख था, उसने मुँहकी खाई थी ॥
राना और मंदरा सखियाँ रानी के संग आई थीं ।
युद्धक्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी ॥

पर पीछे ह्यरोज आ गया, हाय ! घिरी अब रानी थी ।
बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी—
खूब लड़ी मरदानी, वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

तो भी रानी मार-काटकर चलती बनी सैन्य के पार ।
 किंतु सामने नाला आया, था यह संकट विषम अपार ॥
 घोड़ा अड़ा, नया घोड़ा था ; इतने में आ गए सवार ।
 रानी एक, शत्रु बहुतेरे ; होने लगे वार-पर-वार ॥

घायल होकर गिरी सिंहिनी, उसे वीरगति पानी थी ।
 बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी--
 खूब लड़ी मरदानी, वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

रानी गयी सिंघार, चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी ।
 मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी ॥
 अभी उम्र कुल तेइस की थी; मनुज नहीं, अवतारी थी ।
 हमको जीवित करने आई बन स्वतंत्रता नारी थी ॥

दिखा गई पथ, सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी ।
 बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी--
 खूब लड़ी मरदानी, वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

जाओ रानी, याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी ।
 यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतंत्रता अविनाशी ॥
 होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी ।
 हो मदमाती विजय, मिटा दे गोलों से चाहे भाँसी ॥

तेरा स्मारक तू ही होगी, तू खुद अमिट निशानी थी ।
 बुंदेले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी--
 खूब लड़ी मरदानी, वह तो भाँसी वाली रानी थी ॥

अभ्यास-संकेत

- १। भाँसी की रानी पर स्व० सुभद्राजी की कविता हिन्दी की सबसे अधिक लोकप्रिय कविताओं में है। स्पष्ट रूप से समझाइए कि इस कविता के किन-किन गुणों ने इसे अत्यधिक लोकप्रिय बनाया।
- २। उक्त कविता की निम्नांकित पंक्तियों का आशय समझाइए :
 (क) “कुटियों में थी विषम वेदना महलों में आहत अपमान।
 वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरखों का अभिमान॥”
 (ख) “मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी।”
- ३। स्व० सुभद्राजी की रचना-शैली और भाषा के संबंध में एक छोटा परिचय लिखिए।

हिन्दुस्थान हमारा है

कोटि-कोटि कंठों से निकली आज यही स्वर धारा है—
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है !

(१)

जिस दिन सबसे पहले जागे, नवल सृजन के स्वप्न घने,
जिस दिन देश-काल के दो-दो विस्तृत विमल वितान तने,—
जिस क्षण नभ में तारे छिटके, जिस दिन सूरज-चाँद बने,—
तब से है यह देश हमारा, यह अभिमान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है ।

(२)

जबकि घटाओं ने सीखा था सबसे पहले घहराना,—
पहले पहल प्रभंजन ने जब सीखा था कुछ हहराना,—
जबकि जलधि सब सीख रहे थे सब से पहले लहराना,—
उसी अनादि-आदि क्षण से यह जन्म-स्थान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है ।

(३)

जिस क्षण से जड़ रजकण गतिमय होकर जंगम कहलाए,—
जब विहँसी प्रथमा ऊषा वह, जबकि कमल-दल मुसकाए,—
जब मिट्टी में चेतन चमका, प्राणों के भोके आए,—
है तब से यह देश हमारा, यह मन-प्राण हमारा है !!
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

(४)

यहाँ प्रथम मानव ने खोले निंदियारे लोचन अपने !
इसी नभ तले उसने देखे शत-शत नवल सृजन-सपने ;
यहाँ उठे ‘स्वाहा !’ के स्वर, औ यहाँ ‘स्वधा’ के मंत्र बने ;
ऐसा प्यारा देश पुरातन ज्ञान-निधान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

(५)

सतलज, व्यास, चिनाब, वितस्ता, रावी, सिंधु तरंगवती,—
यह गंगा माता, यह यमुना गहर, लहर-रस - रंगवती,—
ब्रह्मपुत्र, कृष्णा, कावेरी, वत्सलता-उत्संग - मती,—
इनसे प्लावित देश हमारा, यह रसखान हमारा है !
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

(६)

विन्ध्य, सतपुड़ा, नागा, खसिया, ये दो औघट घाट महा,—
भारत के पूरब-पश्चिम के ये दो भीम कपाट महा;
तुंग शिखर, चिर अटल हिमालय है पर्वत-सम्राट् यहाँ;
यह गिरिवर बन गया युगों से विजय-निशान हमारा है!
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

(७)

क्या गणना है कितनी लंबी हम सबकी इतिहास लड़ी?
हमें गर्व है कि है बहुत ही गहरे अपनी नींव पड़ी।
हमने बहुत बार सिरजो हैं कई क्रांतियाँ बड़ी-बड़ी,
इतिहासों ने किया सदा ही अतिशय मान हमारा है!
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

(८)

है आसन्न भूत अति उज्ज्वल, है अतीत गौरवशाली,
औ' छिटकी है वर्त्तमान पर बलि के शोणित की लाली,
नव ऊषा-सी विजय हमारी विहँस रही है मतवाली;
हम मानव को मुक्त करेंगे, यही विधान हमारा है!
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

(९)

गरज उठे चालीस कोटि जन सुन ये वचन उछाह भरे,
काँप उठें प्रतिपक्षी जनगण, उनके अंतस्तल सिहरे;
आज नए युग के नयनों से ज्वलित अग्नि के पुंज भरे;
कौन सामने आएगा? यह देश महान हमारा है!
भारतवर्ष हमारा है, यह हिन्दुस्थान हमारा है।

अभ्यास-संकेत

- १। उपर्युक्त कविता की व्याख्या अपने शब्दों में कीजिए।
- २। इस कविता को पढ़कर आपके हृदय में कौन से भाव जागते हैं?
- ३। “हमें गर्व है कि है बहुत ही गहरे अपनी नींव पड़ी।”—इस पंक्ति का गूढ़ार्थ स्पष्ट कीजिए।

जनतंत्र का जन्म

सदियों की ठंडी-बुझी राख सुगबुगा उठी ,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है ;
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो ,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है ।

जनता ? हाँ, मिट्टी की अबोध मूरतें वही ,
जाड़े-पाले की कसक सदा सहनेवाली ,
जब अंग-अंग में लगे साँप हों चूस रहे ,
तब भी न कभी मुंह खोल दर्द कहनेवाली ।

जनता ? हाँ, लंबी-बड़ी जीभ की वही कसम ,
“जनता, सचमुच ही, बड़ी वेदना सहती है ।”
“सो ठीक, मगर, आखिर, इसपर जनमत क्या है ?”
“है प्रश्न गूढ़ ; जनता इसपर क्या कहती है ?”

मानो, जनता हो फूल जिसे एहसास नहीं ,
जब चाहो तभी उतार सजा लो दोनों में ;
अथवा कोई दुधमुंही जिसे बहलाने के
जंतर-मंतर सीमित हों चार खिलौनों में ।

लेकिन, होता भूडोल, बवंडर उठते हैं,
जनता जब कोपाकुल हो भृकुटि चढ़ाती है ;
दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो,
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।

हुंकारों से महलों की नींव उखड़ जाती,
साँसों के बल से ताज हवा में उड़ता है ;
जनता की रोके राह, समय में ताव कहाँ ?
वह जिधर चाहती, काल उधर ही मुड़ता है।

अब्दों, शताब्दियों, सहस्राब्द का अंधकार
बीता ; गवाक्ष अंबर के दहके जाते हैं ;
यह और नहीं कोई, जनता के स्वप्न अजय
चीरते तिमिर का वक्ष उमड़ते आते हैं।

सबसे विराट जनतंत्र जगत का आ पहुँचा,
तैंतीस कोटि-हित सिंहासन तैयार करो ;
अभिषेक आज राजा का नहीं, प्रजा का है,
तैंतीस कोटि जनता के सिर पर मुकुट धरो।

आरती लिए तू किसे ढूँढ़ता है मूरख,
मंदिरों, राजप्रासादों में, तहखानों में ?
देवता कहीं सड़कों पर गिट्टी तोड़ रहे—
देवता मिलेंगे खेतों में, खलिहानों में।

फावड़े और हल राजदंड बनने को हैं,
 धूसरता सोने से शृंगार सजाती है;
 दो राह, समय के रथ का घर्घर-नाद सुनो,
 सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।

२६ जनवरी १९५० ई०]

बुद्ध-आह्वान

विश्व-वेदना निखिल सिमट बज उठी करुण अंतर में;
 देव! हुंकरित हुआ कठिन युगधर्म तुम्हारे स्वर में।
 काँटों पर कलियाँ, गैरिक पर किया मुकुट का त्याग;
 किस सुलग्न में जगा प्रभो! यौवन का तीव्र विराग?

चले ममता का बंधन तोड़, विश्व की महामुक्ति की ओर।

तप की आग, त्याग की ज्वाला में प्रबोध संधान किया;
 विष पी स्वयं, अमिय जीवन का तृषित विश्व को दान किया।
 गूँज रही अब भी नभ में तेरे मानस की व्यथा अथाह;
 बहती है गंगा लेकर कब से तेरा वह अश्रु-प्रवाह!

वैशाली की धूल चरण चूमने ललक ललचाती है;
 स्मृति-पूजन में तप-कानन की लता पुष्प बरसाती है।

बट के नीचे खड़ी खोजती लिए सुजाता खीर तुम्हें;
 बोधिवृक्ष-तल बुला रहे कलरव में कोकिल-कीर तुम्हें।
 शस्त्र-भार से विकल खोजती रह-रह धरा अधीर तुम्हें;
 प्रभो! पुकार रही व्याकुल मानवता की जंजीर तुम्हें।

आह ! सभ्यता के प्रांगण में आज गरल-वर्षण कैसा ?
घृणा सिखा निर्वाण दिलानेवाला यह दर्शन कैसा ?
स्मृतियों का अंधर ! शास्त्र का दंभ ! तर्क का छल कैसा ?
दीन, दलित, असहाय जनों पर अत्याचार प्रबल कैसा ?

आज दीनता को प्रभु की पूजा का भी अधिकार नहीं ;
देव ! बना था क्या दुखियों के लिए निठुर संसार नहीं ?
धन-पिशाच की विजय ! धर्म की पावन-ज्योति अदृश्य हुई ।
दौड़ो बोधिसत्व ! भारत में मानवता अस्पृश्य हुई !

धूप-दीप, आरती, कुसुम ले भक्त प्रेमवश आते हैं ;
मन्दिर का पट बंद देख ‘जय’ कह निराश फिर जाते हैं
शबरी के जूठे बेरों से आज राम को प्रेम नहीं ;
मेवा छोड़ शाक खाने की याद नाथ को नेम नहीं ।

पर गुलाब-जल में गरीब के अश्रु राम क्या पावेंगे ?
बिना नहाए इस जल में क्या नारायण कहलावेंगे ?
मनुज-मेघ के पोषक दानव आज निपट निर्द्वंद्व हुए ;
कैसे बचें दीन ? प्रभु भी धनियों के गृह में बंद हुए ।

अनाचार की कठिन आँच में अपमानित अकुलाते हैं ;
जागो बोधिसत्व ! भारत के ‘हरिजन’ तुम्हें बुलाते हैं ।

जागो विप्लव के वाक् ! दंभियों के इन अत्याचारों से ;
जागो हे, जागो तपनिधान ! दलितों के हाहाकारों से ।

जागो गाँधी पर ।कए गए नरपशु पतितों के वारों से ;
जागो मैत्री-निर्घोंग ! आज व्यापक युगधर्म-पुकारों से ।

जागो गौतम ! जागो महान ! जागो अतीत के क्रांतिगान !
जागो धरती के धर्म-तत्व ! जागो हे, जागो बोधिसत्व !

अभ्यास-संकेत

- १। 'जनतंत्र का जन्म' शीर्षक कविता की व्याख्या अपने शब्दों में कीजिए ।
- २। "सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।"—इस उक्ति का भावार्थ समझाइए ।
- ३। "ओजस्विता और भाषा का अदम्य प्रवाह दिनकर की रचनाओं की प्रमुख विशेषताएँ हैं।" उदाहरण देते हुए इस कथन की पुष्टि कीजिए ।
- ४। बुद्ध-आत्मान के अंतिम छंदों की व्याख्या कीजिए । कवि ने बुद्ध का आवाहन किस भावना से किया है ?

श्यामनारायण पाण्डेय जन्म : १९१० ई०

हल्दीघाटी

निर्बल बकरों से बाघ लड़े,
भिड़ गए सिंह मृग-छौनों से।
वोड़े गिर पड़े, गिरे हाथी,
पैदल बिछ गए बिछौनों से॥

हाथी से हाथी जूझ पड़े,
भिड़ गए सवार सवारों से।
घोड़ों पर घोड़े टूट पड़े,
तलवार लड़ी तलवारों से॥

हय-रुण्ड गिरे, गज-मुंड गिरे,
कट-कट अवनी पर शूंड गिरे।
लड़ते लड़ते अरि-भुंड गिरे,
भू पर हय विकल वितुंड गिरे॥

क्षण महाप्रलय की बिजली-सी
तलवार हाथ की तड़प-तड़प,
हय-गज-रथ-पैदल भगा भगा
लेती थी वैरी वीर हड़प॥

क्षण पेट फट गया घोड़े का ,
 हो गया पतन कर-कोड़े का ।
 भू पर सातंक सवार गिरा ,
 क्षण पता न था हय-जोड़ का ॥

चिंघाड़ भगा भय से हाथी ,
 लेकर अंकुश पिलवान गिरा ।
 भटका लग गया, फटी भालर ,
 हौदा गिर गया, निशान गिरा ॥

कोई नत-मुख बेजान गिरा ,
 करवट कोई उत्तान गिरा ।
 रण-बीच अमित भीषणता से ,
 लड़ते-लड़ते बलवान गिरा ॥

होती थी भीषण मार-काट ,
 अतिशय रण से छाया था भय ।
 था हार-जीत का पता नहीं ,
 क्षण इधर विजय, क्षण उधर विजय ॥

धड़ कहीं पड़ा, सिर कहीं पड़ा ,
 कुछ भी उनकी पहचान नहीं ।
 शोणित का ऐसा वेग बढ़ा
 मुर्दे बह गए निशान नहीं ॥

मेवाड़ - केसरी देख रहा
केवल रण का न तमाशा था ।
वह दौड़-दौड़ करता था रण ,
वह मान-रक्त का प्यासा था ॥

चढ़ कर चेतक पर धूम-धूम
करता सेना - संचालन था ।
ले महामृत्यु को साथ-साथ
मानो प्रत्यक्ष काली था ॥

रण-बीच चौकड़ी भर-भर कर
चेतक बन गया निराला था ।
राणा प्रताप के घोड़े से
पड़ गया हवा को पाला था ॥

गिरता न कभी चेतक-तन पर
राणा प्रताप का कोड़ा था ।
वह दौड़ रहा अरि-मस्तक पर
या आसमान पर, घोड़ा था ॥

जो तनिक हवा से बाग हिली
लेकर सवार उड़ जाता था ।
राणा की पुतली फिरी नहीं
तब तक चेतक मुड़ जाता था ॥

है यहीं रहा, अब यहाँ नहीं,
 वह वहीं रहा, है वहाँ नहीं।
 थो जगह न कोई जहाँ नहीं,
 किस अरि-मस्तक पर कहाँ नहीं ॥

बढ़ते नद-सा वह लहर गया,
 वह गया गया फिर ठहर गया।
 विकराल वज्र-भय बादल-सा
 अरि की सेना पर घहर गया ॥

भाला, गिर गया, गिरा निषंग,
 हथ - टापों से खन गया अंग।
 बैरी - समाज रह गया दंग,
 घोड़ा का ऐसा देख रंग ॥

चढ़ चेतक पर तलवार उठा
 रखता था भूतल पानी को।
 राणा प्रताप सिर काट-काट
 करता था भेंट भवानी को ॥

सेना-नायक राणा के भी
 रण देख-देखकर चाह भरे।
 मेवाड़ सिपाही लड़ते थे
 दूने - तिगुने उत्साह भरे ॥

क्षण भीषण हलचल मचा-मचा
 राणा-कर की तलवार बढ़ी ।
 था शोर रक्त पीने को यह
 रण-चंडी जीभ पसार बढ़ी ॥

वह हाथी-दल पर टूट पड़ा ,
 मानो उस पर पवि छूट पड़ा ।
 कट गई वेग से भू, ऐसा
 शोणित का नाला फूट पड़ा ॥

जो साहस कर बढ़ता उसको ,
 केवल : कटाक्ष से टोक दिया ।
 जो वीर बना नभ-बीच फेंक ,
 बरछे पर उसको रोक दिया ॥

क्षण उछल गया अरि घोड़े पर ,
 क्षण लड़ा सो गया घोड़े पर ।
 बैरी - दल से लड़ते - लड़ते
 क्षण खड़ा हो गया घोड़े पर ॥

क्षण भर में गिरते रुंडों से ,
 मदमस्त गजों के शृंडों से ;
 घोड़ों से ; विकल , वितुंडों से ,
 पट गई भूमि नर-मुंडों से ॥

ऐसा रण राणा करता था ,
 पर उसको था संतोष नहीं ।
 क्षण-क्षण आगे बढ़ता था वह ,
 पर कम होता था रोष नहीं ॥

तब तक प्रताप ने देख लिया ,
 लड़ रहा मान था हाथी पर ।
 अकबर का चंचल साभिमान
 उड़ता निशान था हाथी पर ॥

वह विजय-मंत्र था पढ़ा रहा ,
 अपने दल को था बढ़ा रहा ।
 वह भीषण समर-भवानी को
 पग-पग पर बलि था चढ़ा रहा ॥

हय-नस-नस में बिजली दौड़ी ,
 राणा का घोड़ा लहर उठा ।
 शत-शत बिजली की आग लिए
 वह प्रलय मेघ-सा घहर उठा ॥

रंचक राणा ने देर न की ,
 घोड़ा बढ़ आया हाथी पर ।
 बेरी-दल का सिर काट-काट
 राणा चढ़ आया हाथी पर ॥

वह महा-प्रतापी घोड़ा उड़
जंगी हाथी को हबक उठा ।
भीषण विप्लव का दृश्य देख ,
भय से अकबर दल दबक उठा ॥

क्षण भर छल-बल कर लड़ा, अड़ा ,
दो पैरों पर हो गया खड़ा ।
फिर अगले दोनों पैरों को
हाथी-मस्तक पर दिया गड़ा ॥

यह देख मान ने भाले से
करने की की क्षण चाह समर ।
इस तरह थाम कर भटक दिया
हाथी की भी झुक गई कमर ॥

राणा के भीषण भटके से
हाथी का मस्तक फूट गया ।
अंबर-कलक उस कायर का
भाला भी दब कर टूट गया ॥

राणा ने हँस कर कहा, “मान,
अब बस कर दे हो गया युद्ध ।
बैरी पर वार न करने से
मेरा भाला हो रहा क्रुद्ध ॥

अपने शरीर की रक्षा कर
 भग जा, भग जा, अब जान बचा ।”
 यह कहकर भाला उठा लिया,
 भीषणतम हाहाकार मचा ॥

छिप गया मान हौदे-तल में
 टकरा कर हौदा टूट गया ।
 भाला की हलकी हवा लगी,
 पिलवान गिरा, तन छूट गया ॥

अब बिना महावत के हाथी
 चिंघाड़ भगा राणा-भय से ।
 संयोग रहा बच गया मान
 खूनी भाला, राणा-हय से ॥

सागर-तरंग की तरह इधर
 बैरी राणा पर टूट पड़े ।
 तलवार गिरी शत एक साथ,
 शत बरछे उन पर छूट पड़े ॥

राणा के चारों ओर मुगल
 होकर करने आघात लगे ।
 खा खा कर अति तलवार चोट
 क्षण-क्षण होने भू-पात लगे ॥

दानव समाज में अरुण पड़ा ,
जल-जंतु-बीच हो वरुण पड़ा ।
इस तरह भभकता राणा था
मानो सर्पों में गरुड़ पड़ा ॥

हय-रुंड कतर गज-मुंड पोंछ ,
अरि-व्यूह-गले पर फिरती थी ।
तलवार वीर की तड़प-तड़प
क्षण-क्षण बिजली-सी गिरती थी ॥

पर दिन भर लड़ने से तन से
चल रहा पसीना था तर-तर ।
अविरल शोणित की धारा थी
राणा-क्षत से बहती झर-झर ॥

घोड़ा भी उनका शिथिल बना ,
था उसको चैन न घावों से ।
वह अधिक-अधिक लड़ता यद्यपि
दुर्लभ था चलना पाँवों से ॥

तब तक भाला ने देख लिया
राणा प्रताप हैं संकट में ।
बोला, न बाल बाँका होगा
जब तक हैं प्राण बचे घट में ॥

अपनी तलवार दुधारी ले
 भूख नाहर-सा टूट पड़ा।
 कलकल मच गया, अचानक दल
 आश्विन के घन-सा फूट पड़ा ॥

राणा की जय ! राणा की जय !
 वह आगे बढ़ता चला गया।
 राणा प्रताप की जय करता
 राणा तक चढ़ता चला गया ॥

रख लिया छत्र अपने सिर पर
 राणा प्रताप-मस्तक से ले।
 ले स्वर्ण-पताका जूझ पड़ा,
 रण-भीम-कला अंतक से ले ॥

भाला को राणा जान मुगल
 फिर टूट पड़े वे भाला पर।
 मिट गया वीर, जैसे मिटता
 परवाना दीपक-ज्वाला पर ॥

भाला ने राणा-रक्षा की,
 रख लिया देश के पानी को।
 छोड़ा राणा क साथ-साथ
 अपनी भी अमर कहानी को ॥

अभ्यास-संकेत

- १। हल्दीघाटी के ऐतिहासिक युद्ध का जो दृश्य कवि ने चित्रित किया है, उसे अपने शब्दों में लिखिए।
- २। भाला का आत्मदान कौन-सी प्रेरणा देता है ?
- ३। उक्त कविता की भाषा और पद्ययोजना पर अपने विचार लिखिए।

[illegible]

[उत्तर प्रदेश में कूर्मांचल क्षेत्र (कुमाऊँ) की नैसर्गिक सुषमा अत्यंत मनोहर है। अल्मोड़ा ज़िले में कौसानी नामक स्थान तो असीम सुंदरता का निकेत है। बापू ने वहाँ के प्रवास के दिनों में 'अनासक्तियोग' की रचना की थी। कविवर पं० सुमित्रानंदन पंत का जन्म-स्थान कौसानी ही है। कवि ने वहाँ के सौंदर्य की छवि अंकित करते हुए जो कविता लिखी है उसके कुछ छंद नीचे उद्धृत हैं।]

कौसानी

यह नई धरा, आकाश नया,
यह नया लोक मिल गया मुझे !
थी आत्मा जिसके हित अशांत
वह शांत लोक मिल गया मुझे !

इसके तरुओं की छाँह नई,
इसकी बयार में नया परस,
कौसानी का जादू ऐसा—
दो-चार बरस, दो-चार दिवस !

शायद न कभी मुरझाते हों
जीवन-डाली से यहाँ फूल,
दो-चार बरस के सुख-दुख में
दो-चार दिवस में गया भूल !

दो-चार बरस रहता यदि मैं
दो-चार दिवस-सा ही लगता ,
कौसानी का जादू ऐसा
मैं कभी न पल-छिन गिन सकता ।

है यहाँ नीर में नया स्वाद ,
चिड़ियों के रव में नया चाव ,
मैं भूल गया अपने अभाव ,
भर गए हृदय के सभी घाव ।

जो जन-रव में न मिली, न मिली
जो किल्लरियों के कलरव में ;
वह शांति मुझे मिल गई यहाँ
इस कौसानी के नीरव में !

मन के सब शंका-शोक बुझे ,
हो गया विश्व फिर नया मुझे !
यह नई धरा, आकाश नया ,
यह नया लोक मिल गया मुझे !

कोसी की हरित-भरित घाटी
करती है सुख से शांत शयन ,
प्रहसित संकुचित गात शोभित
नव-धान-वरन परिधान पहन !

सिरहाने रक्खा शीश-मुकुट
 वह कहलाता है कौसानी ,
 जिसके कारण कहलाती वह
 कूर्माचल भर की पटरानी !

कोसी की हरित भरित घाट ,
 हम उसकी करवट से निकले ,
 जब पार कर चुके सोमेश्वर—
 ज्यों सहसा जगे पुण्य पिछले ।

हम दौड़ रहे थे द्रुत गति से ,
 सामने खड़ी थी कौसानी ,
 उस क्षण न्यौछावर थे बादल ,
 था बरस रहा रिम-भ्रिम पानी !

जड़ घन क्या, मैं क्या, उस छवि पर
 न्यौछावर हो जाते ज्ञानी ।
 मैं मंत्रमुग्ध सँभला कि, तुरत
 जा गई स्वप्नवत् कौसानी !

थी नई धरा, आकाश नया ,
 था नया लोक मिल गया मुझे ;
 वह छिना हुआ छवि का सपना ,
 फिर कवि अपना मिल गया मुझे !

यह गिरि गिरिजा कौसानी की
सामने पड़ा शिव का पड़ाव ,
कौसानी और हिमालय में
तिल भर न परस्पर उर-दुराव !

वह सबसे ऊँची, आस-पास
पर्वत-प्रदेश ज्यों विनतमाथ ,
उत्तर में कौसानी की छाया
में सनाथ हैं बैजनाथ !

ज्यों हरे रेशमी दामन-सी
घेरे उर्वर घाटियाँ पड़ीं ,
कुछ मुक्त नील अलकों-सो
जिनपर पड़ी हुई हैं निर्भरिणी !

यह तपोभूमि कौसानी है
तप की जोवित जाग्रत महिमा ,
है कौसानी में मूर्तिमान
तप-निरत साधनामयी उमा !

नंदादेवी के तुंग शिखर से
देख देख शोभा शंकर ,
हो गए हिमालय में विजड़ित
तज ताण्डव नर्तन प्रलयंकर !

इस देवभूमि कौसानी में
 आलोक नया मिल गया मुझे !
 यह नई धरा, आकाश नया,
 यह लोक नया मिल गया मुझे !

घिर आए उमड़-धुमड़ बादल,
 पर्वत-प्रदेश में ऋतु पावस ।
 ढँक गया व्योम, छिप गया सूर्य,
 हो गई दिवस में ही मावस ।

कर साँय-साँय चल पड़ी पवन,
 काँपा पल में पर्वत का वन ;
 पशु-पक्षी खोज खोह - कोटर
 भागे ले धुप-धुप करता मन !

कातर हो तुरत कराह उठे
 वे ऊँचे ऊँचे बड़े चीड़,
 हिल गए बाँज औ' देवदारु
 उड़तीं चिड़ियाँ तज ध्वस्त नीड़ !

कड़-कड़ चड़-चड़ टूटते पेड़,
 करती कौसानी शक्ति-नृत्य ;
 विद्युत से प्रतिविम्बित, नर्तित
 छाया-प्रतों से दास - भृत्य !

दे पद-प्रहार घनाद-ताल
नाचती मत्त काली कराल ,
लो, तड़क गया नभ इस्पाती ,
नेत्रों से निकली तड़ित-ज्वाल !

उड़ गई चेतना हृदय कौंध
ज्यों चकाचौंध हो गई मुझे ,
यों शक्ति-रूपिणी कौसानी की
क्षणिक झलक मिल गई मुझे !

पल में हो गई प्रतिष्ठित अब
वह शांतिमूर्ति तापसी उमा ,
पल में आकाश - धरा निखरे ,
बिखरी दश दिशि स्वर्गिक सुखमा !

बन गया हिमालय हेमकूट ,
घन स्वर्णपत्र से ठौर - ठौर ,
आती हैं हंसमुख साँभ-उषा
ज्यों ओढ़े रंगवाली पिछौर *!

फिर झिल्ली की झनकार हुई ,
कठकीड़े को संगीत मिला ;

* पीली ज़मीन पर लाल छोट की ओढ़नी, जिसका अल्मोड़ा-प्रदेश में बहुत क्यादा चलन है।

कुटुकी निज पके हुए स्वर में
उत्तराखंड की पिक प्रमिला !

अब सब थक कर चुप हो बैठे,
कितनी प्रशांत है कौसानी !
सब ओर कुशल, ईश्वर ऊपर,
निश्चित शांत वन के प्राणी !

नभ ज्यों योगी का निर्मल चित,
हैं धरा मौन ज्यों विनय भक्ति,
बापू के श्रीमुख से निकला—
'सतकर्म, अहिंसा, अनासक्ति* !'

है संज्ञा-शून्य व्योम शोभा लख,
मौन मूक नगपति नगेन्द्र !
उसका कैसे गुण-गान करे
जो व्यक्ति नाम का ही नरेन्द्र !

विद्युत के दीप जला बादल
संकीर्तन-रत कर-ताल बजा ,

* अनासक्ति-योग के नाम से गीता का भाष्य गांधीजी ने कौसानी ही
म किया था ।

पूनों पहनाती विजयमाल—
युग इन्द्रचाप के हार सजा* !

रवि-थाली में धर धूप-दीप
आरती भारती भी उतार ,
वंदना कर रही हो जिसकी
कवि के उर में मूरत सँवार ,

उस देव-भूमि की गुण-गाथा
गाऊँ भी तो कैसे गाऊँ ?
किस पारिजात से भाव-पुष्प
में उसके पूजन को लाऊँ ?

अनुभूति इन्द्रियों की सीमित ,
भाषा की अक्षमताएँ हैं ;
वर्णनातीत हैं पर वह छवि ,
जिसकी न कहीं सीमाएँ हैं !

में भूल गया निज सीमाएँ जिससे ,
वह छवि मिल गई मुझे !
जो दुर्लभ थी हो गई सुलभ ,
सच, कौसानी मिल गई मुझे !

* चाँदनी रात में इन्द्रधनुष का यह अद्भुत दृश्य कौसानी से बहुधा देखा जाता है । इन्द्रधनुष और सामने हिम पर उसकी छाया, दोनों मिलकर मालाकार प्रतीत होते हैं ।

सुख-दुख

जब तक मन में दुर्बलता है,
दुख से दुख, सुख से ममता है !

पर न सदा रहता जग में सुख,
रहता सदा न जीवन में दुख !
छाया - से माया - से दोनों
आने-जाने हैं ये सुख-दुख !

मन भरता, मन, पर क्या इनसे
आत्मा का अभाव भरता है !

बहुत नाज़ था अपने सुख पर,
पर न टिका दो दिन सुख-वैभव;
दुख ? दुख को भी समझा सागर,
एक बूंद भी नहीं रहा अब ;

देखा जब दिन-रात चीड़-वन
नित कराह आहें भरता है !

मैंने दुख-कातर हो होकर
जब जब दर-दर कर फैलाया,
सुख के अभिलाषी मन मेरे
तब तब सदा निरादर पाया ;

ठोकर खा खाकर पाया है—
दुख का कारण कायरता है !

सुख भी नश्वर, दुख भी नश्वर,
यद्यपि सुख-दुख सबके साथी ;
कौन घुले फिर सोच-फ़िकर में
आज घड़ी क्या है, कल क्या थी !

देख तोड़ सीमाएँ अपनी
जोगी नित निर्भय रमता है

जब तक तन है, आधि-व्याधि हैं ;
जब तक मन, सुख-दुख हैं घेरे ;
तू निर्बल तो क्रीत भृत्य है,
तू चाहे, ये तेरे चेरे !

तू इनसे पानी भरवा, भर
ज्ञान-कूप, तुझमें क्षमता है !

सुख-दुख के पिजर में बंदी
कीर धुन रहा सिर बेचारा,
सुख-दुख के दो तीर चीर कर
बहती नित गंगा की धारा,

तेरा जी चाहे जो बन ले ,
तू अपना हरता-करता हे !

अभ्यास-संकेत

- १। निम्नांकित पंक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए :
“जबतक मन में दुर्बलता है, दुख से दुख, सुख से ममता है।”
- २। कौसानी की जो छवि कवि ने अंकित की है उसका अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।
- ३। आपने नैसर्गिक सौंदर्य से परिपूरित जो स्थल देखा हो उसका सरस वर्णन लिखिए—एक लघु निबंध के रूप में।

टिप्पणियाँ

कवीर

पैडा—सार्ग । भुजंगम—सर्प । दुहेला—कष्ट देनेवाला । पन—
प्रण, प्रतिज्ञा । बाजिधन—अश्वधन (घोड़ों का स्वामित्व) । मूल—
जड़ । नौबत—शहनाई आदि बाजे । सिलहली—गीली या चिकनी ।
गैल—रास्ता । पिपीलिका—चींटी ।

सूरदास

बेनी—चोटी । ओछत—भटकारना । पहि-पहि—अनुहार कर-कर ।
पानि—हाथ । बरज—मना करना । गोड़—पैर । कोहि—क्रोध करना ।
रिस—क्रोध । चवाई—चुगलखोर । सौं—शपथ, कसम । दुहुँधा—दोनों
ओर से । महर—नन्द । धिरयो—धीरज दिया । बियारी—झ्यालू,
रात्रि का भोजन । लुचुई—पूरी । सजूरी—एक प्रकार की मिठाई ।
दनियाँ—दानी । छविधनियाँ—धन्य छवि । नावत—भुकाना । अँचवन—
हाथ धोना । भगुली—शिशुओं का वस्त्र । बहियन—ब्राह्मण । पतियायो—
विश्वास किया । लकुट—लाठी । समदरसी—समान दृष्टि से देखनेवाला ।
नार—नाली । सुरसरि—गंगा । अरगजा—चंदन । मरकट—बंदर ।
निषंग—तरकश । खनावै—खुदवाता । अबुज—कमल । छेरी—बकरी ।

गोस्वामी तुलसीदास

भवचापू—शंकर का धनुष । परितापू—दुःख । ठवनि—खड़े होने
का ढंग । अवलीन—पंक्तिर्याँ । कोक—चकवा । आयसु—आज्ञा ।
कुंजर—हाथी । बन्दि—बंदना कर । चापा—धनुष । दापा—अभिमान,

दर्प । मंदर—पुराणों के अनुसार वह पर्वत जिससे देवों और असुरों ने
 समुद्र मथा था । सयानप—चालाकी, सयानापन । कुंभज—अगस्त्य ऋषि
 जिन्होंने समुद्र सोख लिया था । सायक—वाण । गरुआई—भारीपन ।
 पुलकावली—रोमांचित । सिख—सीख, सलाह । कुलिसहु—वज्र से भी ।
 हरुअ—हलका । लवनिमेष—एक क्षण । मनसिज—कामदेव । अलिनि—
 भ्रमरी । राँचा—मन लग गया, अनुरक्त हो गया । व्यालहि—सर्प को ।
 हरकोदण्ड—शिवका धनुष । कमठ—कछुआ । कोला—शूकर । कदराई—
 कायरता । बोहित—नाव । कनहारू—केवट । बिहात—कटता है ।
 बिसेखी—विशेष । अतिलाघव—बहुत सरलता से । रविबाजि—सूर्य के
 रथ के घोड़े । कूरम—कछुआ । चाप—धनुष । राकेस—चन्द्रमा ।
 ह्य—घोड़ा । दुन्दुभी—नगाड़ा । पैरत—तैरते हुए । गवनी—गमन किया ।
 चित्र अवरेखी—चित्रलिखित । जलज—कमल । कागर—पंख ।
 सुभामिनि—स्त्री, पत्नी । राजिवलोचन—कमलनयन । बटाऊ—पथिक,
 यात्री । बूडत—डूबते हुए । तटिनी—गंगा । अध—पाप । करारे—
 किनारे । धरनो—पत्नी । रावरे—आपके । बरबैन—सुवचन । वनिता—
 नारी, पत्नी । बिथकीं—चकित होना । चवै—चूने लगे । तून—
 तरकश, तूणीर । बालधी—पूँछ । लीलिबे को—निगलने को । रसना—
 जीभ । व्योम—आकाश । कलाप—समूह । कृसानु—अग्नि । जातुधान—
 राक्षस । प्रजारी—जलाना । परिष—व्योड़ा । सौँज—सामग्री । पुगी-
 फल—सुपारी । खुवा—चमचा । हुतै—आहुति देना, भस्म करना ।
 बानिक—संयोग । साखि—साक्षी । निगमनि—वेदों-शास्त्रों । कंज—कमल ।
 कंजारुन—कमल के समान अरुण । कन्दर्प—कामदेव । नौमि—
 नमस्कार करता हूँ । निकदनं—नाश करने वाला । आजानु—घुटनों तक ।
 जित—जीत । गंजनं—नष्ट करनेवाला । सिला—पत्थर । बपु—शरीर ।
 सोकहत—दुःखहरण । आमिष—मांस-युक्त । जोषित—स्त्री ।
 उधारी—उद्धार किया । कलिमल—कलियुग के पाप । भवितव्यता—
 होनहार । इन्दु—चन्द्रमा । भान—सूर्य ।

मीराबाई

राजित—शोभित । नूपुर—पैजनी, घुंघरू । बहल—वत्सल ।
छोई—छिलका, निस्सार वस्तु । अँचाया—आचमन करके, पीकर ।
मघवा—इन्द्र ।

रहीम

निशिवासर—रात-दिन । उवत—उदय होना । अथवत—अस्त होना ।
मधुकरो—भिक्षा । केरू—केला । प्यादे—हरकारा, पदाति । फ़रजी—
वज्जीर, मंत्री । बापुरे—बेचारा । जुहार—अभिवादन । मेख—कील ।
बिलगाय—अलग हो जाना । अठिलैहैं—हँसी करेंगे । भाँवर—विवाह,
अग्नि की परिक्रमा जो विवाह होने पर वर-वधू करते हैं । सेरावत—
बहा देना, विमर्जन करना । जोखिता—स्त्री । अमी—अमृत ।

रसखान

मँभारन—बीच में । पुरन्दर—इंद्र । कालिन्दी—यमुना । कलधौत—
सोना, चाँदी । कानि—लोक-लाज । चेटक—जादू, माया ।
छछियाँ—छाछ पीने का एक छोटा बर्तन ।

बिहारीलाल

बानक—वेश, सज-धज । फुलेल—इत्र, तेल । दमामा—नगाड़ा ।
ओथरो—उथला । बाय—बावड़ी । चसमा—ऐनक । बीराइ—बावलापन,
पागलपन ।

गिरिधर कविराय

पैवरिया—द्वारपाल, दरवान । तरह—छयाल न करना । निदान—
अंत । बाठी—यात्री, बटोही । वाफता—एक प्रकार का बूटीदार रेशमी
कपड़ा । बकुचा—गठ्ठर, बड़ी गठरी । मोट—गठरी । घामें—धूप में ।
पौरी—ड्योढ़ी, दरवाजा । अंक—आलिंगन । अनखेहें—क्रोधित होंगे ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

सोम—दुःख । विहंगम—पक्षी । बिधि—ब्रह्मा । अधायें—थकना ।
बरजौ—रोक । रखेल—उपपत्नी के रूप में रखी हुई स्त्री ।

स्व० श्रीधर पाठक

पयोद—बादल । कलुस-हर—मलिनता का हरण करनेवाला ।
पवमान—वायु । निहिचल—निश्चल, स्थिर । घमंकहु—घहराओ, (घम-
धम का-सा गंभीर शब्द होना) । धुर—शीर्ष, चोटी । दादुर—मेढ़क ।
भेक—मढ़क । सस्यतून—धान्य, अनाज । प्रथित—विस्तृत, विशाल ।

श्री मैथिलीशरण गुप्त

प्रवृत्ति—इच्छा । क्षुधार्त्त—भूख से व्याकुल । उशीनर—राजा शिवि
के पिता । अपंक—पंकहीन, निर्मल । स्वभू—ब्रह्मा । साकेत—अयोध्या ।

केतु—पताका । तोरण—बंदनवार । अच्छ—स्वच्छ । पौर—नगर की ।
गवाक्षों—खिड़कियों । पारावत—कबूतर । शिखी—मोर । कलित—मनोहर ।
समवेदना—सहानुभूति । वर्म्म—कवच । उपलक्ष—उद्देश्य । मेखला—
करधनी । बन्दीजन—भाट-चारण । जठरानल—भूख की ज्वाला ।
शुचि—शुद्ध, स्वच्छ । राजि—पंक्ति ।

पं० रामनरेश त्रिपाठी

दिनकर—सूर्य । घोष—नाद, आवाज । अविरल—निरन्तर । अर्णव—
समुद्र । उडुगण—तारे । आकर—निकेत । कातर—व्याकुल । विलसित—
सुशोभित । उदर-दरी—गर्भ । स्वार्थ-प्रसित—स्वार्थ में फँसा हुआ ।
श्रुति—कान ।

पं० माखनलाल चतुर्वेदी

किरीट—मुकुट । पीड़—वृक्ष का तना । मौलिक—नवीन, तात्त्विक ।
आतप—धूप । सद्यः-स्नाता—तुरंत नहायी हुई ।

स्व० श्री जयशङ्कर 'प्रसाद'

संसृति—संसार । पवि—वज्र । तुग—ऊँचा । प्रबुद्ध—जागृत ।
अमर्त्य—अमर । अराति—शत्रु । सुबाड़वाग्नि—समुद्र के अन्दर जलती
हुई अग्नि । प्रवीर—बहादुर ।

श्री सुमित्रानन्दन पंत

पाँवड़े—वह बिछावन जो किसी बड़े व्यक्ति के लिए मार्ग में बिछाया जाता है। प्रभावान—आभापूर्ण। खर्व—अपूर्ण, विकलांग। विषण्ण—दुःखी। स्तब्ध—स्थिर, शांत। भीमाकाश—विशाल आकाश। इंगित—इशारा। सोच्छवास—उसास के साथ। मिस—बहाना। अस्थि—हड्डी। समासीन—अच्छी तरह बैठना, प्रतिष्ठित। तून—रूई। मनोज—कामदेव। विग्रहों—कलहों, लड़ाई-भगड़ों। विषाद—दुःख, खेद। सूत्रधार—संचालक। प्रवाद—अपवाद। निषाद—संगीत का सप्तम उच्चतम स्वर।

श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

पुण्य-श्लोक—शुद्ध चरित्रवाला। धृतलक्ष—ध्यान रखते हुए, सजग। पर्यटन—भ्रमण। अवगत—ज्ञात। वीणावादिनी—सरस्वती। रव—शब्द। कलुष—पाप। मंद्र—गंभीर।

श्रीमती महादेवी वर्मा

कालिंदी—यमुना। रजत—चाँदी। निमिष—पल, क्षण। विभूति—भस्म, राख।

स्व० श्रीमती सुमद्रा कुमारी चौहान

अनंग—कामदेव। रस-विलास—मौज-बहार। दलित-त्राण—दुखियों की रक्षा। दुरंत—कठिन। हंत—आह। फिरंगी—अंग्रेज। व्यूह—

समूह-योजना । सुभट—योद्धा । विरुदावलि—गुणावली, प्रशंसा ।
वारिस—उत्तराधिकारी । बिरानी—परायी । घात—प्रहार । बेजार—
दुःखी । आह्वान—बुलावा, चुनौती । सरनाम—मशहूर, प्रसिद्ध ।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

सृजन—रचना, नव-निर्माण । वितान—बड़े तम्बू । प्रभंजन—
आँधी-तूफान । स्वधा—इस का प्रयोग यज्ञ में हवि देने के समय होता
है । उत्संग—गोद । निशान—झंडा । शोणित—रक्त ।

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

एहसास—ज्ञान होना । कोपाकुल—क्रोध से व्याकुल । ताव—
सामर्थ्य, हिम्मत । अब्दों—वर्षों । गन्नाभ—खिड़की । धूसरता—मिट्टी
में सना हुआ । निखिल—संपूर्ण । युगधर्म—सामयिक कर्तव्य ।
गैरिक—गेरुए रंग का । अमिय—अमृत । वैशाली—उत्तरी बिहार की
एक प्राचीन नगरी का नाम । प्रांगण—आँगन । नेम—नियम ।
निर्द्वन्द्व—निश्चिन्त । विप्लव—विद्रोह । निर्घोष—गर्जन ।

श्री श्यामनारायण पाण्डेय

छौनों—बच्चों । किंतुंड—हाथी । निशान—ध्वज, झंडा । उस्तान—
चित्त, सीधा । कपाली—महादेव । निषंग—तरकस । पवि—वज्र ।
कटाक्ष—तिरछी नजर । रंचक—थोड़ी । ह्बक—भपटना । क्षत—घाव ।

श्री नरेन्द्र शर्मा

बयार—वायु । परस—स्पर्श । छिन—क्षण । परिधान—वस्त्र,
 पोशाक । कूर्माचल—कुमाऊँ । गिरिजा—पार्वती । विनतमाथ—सिर
 झुकाए हुए । निरत—काम में लगे हुए । विजड़ित—जड़े हुए ।
 पावस—वर्षा ऋतु । ध्वस्त—उजड़े हुए । नर्तित—नाचते हुए ।
 सुखमा—शोभा । हेमकूट—स्वर्ण पर्वत । प्रमिला (प्रमीला)—तन्द्रा,
 उँघाई, थकावट, शिथिलता । व्योम—आकाश । इन्द्रचाप—इन्द्र-धनुष ।
 पारिजात—हरसिंगार । नाज—गर्व । नश्वर—नष्ट हो जानेवाला ।
 क्रीत—खरीदा हुआ । क्षमता—सामर्थ्य ।
